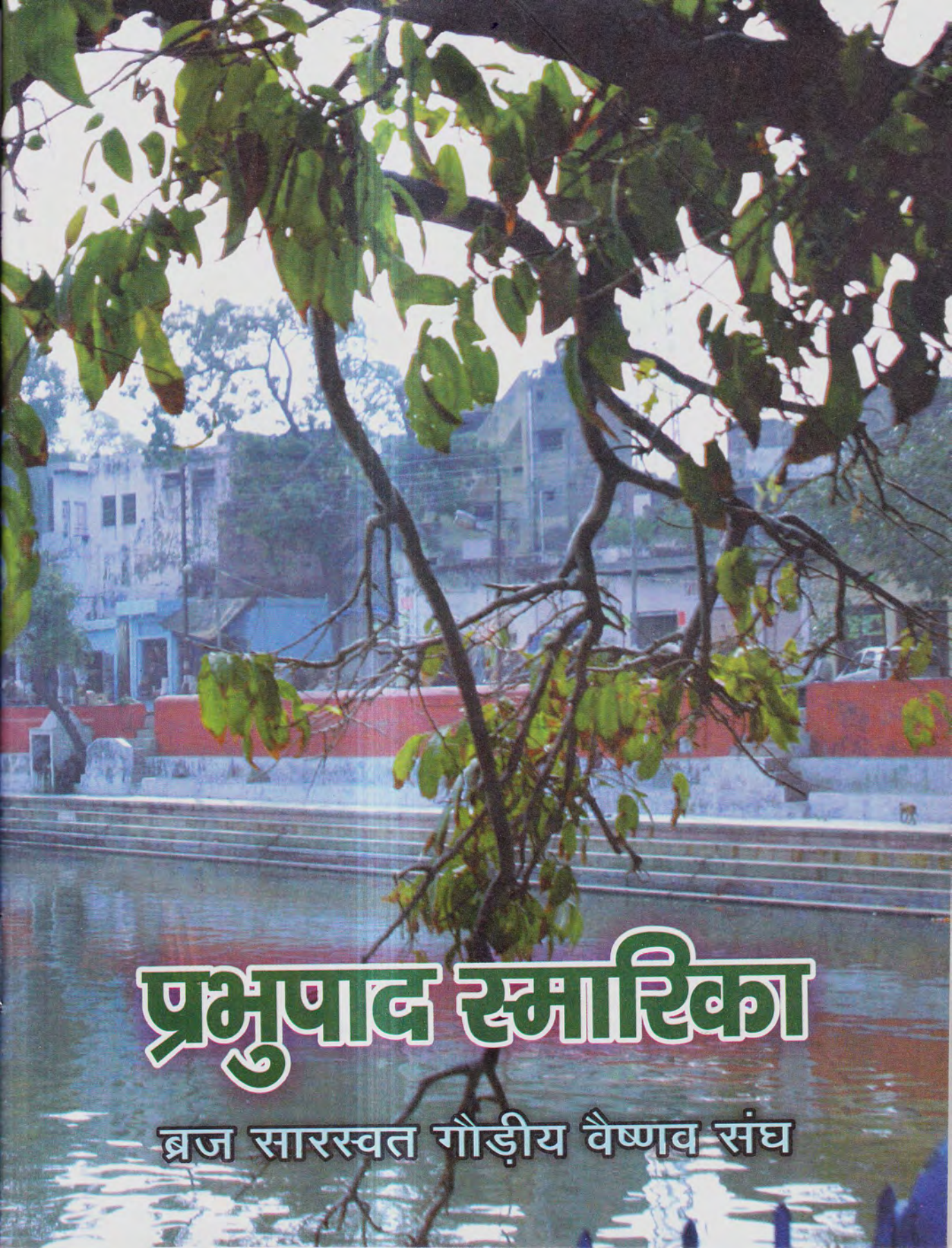

प्रभुपाद स्मारिका

ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ

শ্রীশ্রীগুরুগৌরাঙ্গৌ জয়তঃ।

नम ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्तसरस्वतीति नामिने॥
श्रीवार्षभानवी देवी दयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः॥
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य श्रीरूपानुग भक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्ति विग्रहाय नमोऽस्तुते॥
नमस्ते गौरवाणी – श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्त – ध्वान्तहारिणे॥

ॐ विष्णुपाद परमहंसकुल मुकुटमणि अनन्त श्रीविभूषित आचार्य भास्कर

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद

की १३९ वीं शुभाविर्भाव तिथि पूजा पर

ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ द्वारा निवेदित श्रद्धार्घ्य

मुख्य सन्दर्भ ग्रन्थ

१. साप्ताहिक गौड़ीय १४ खण्ड।
२. श्रील प्रभुपादेर पत्रावली।
३. श्रील प्रभुपादेर वक्तृतावली, चतुर्थ खण्ड।
४. श्रीश्री चैतन्य भागवत।
५. श्रीश्री चैतन्य चरितामृत।

प्रकाशक : ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ
सम्पादक : श्रीमद् भक्तिविदग्ध भागवत महाराज
प्रच्छद : श्रीराधाकुण्ड।

यह स्मारिका श्रद्धामूल्य से वितरित किया जाता है। भविष्य में इस प्रकाशन कार्य के लिए जो सज्जन आर्थिक सेवा करना चाहते हैं, वे कृपया व्यासपूजा परिचालक समिति के कोषाध्यक्ष से सम्पर्क करें।

विशेष कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत पुस्तिका के श्रुति-लेखन व भाषा-संशोधन के लिए श्रीबिहारीलाल शर्मा (गुसाँई मोहल्ला, नन्दगाँव) की सेवा प्रचेष्टा प्रशंसनीय हैं, उनके प्रति और संदर्भ ग्रन्थों के लेखक, सम्पादक तथा प्रकाशकों के प्रति ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ आभार व्यक्त करता है।

ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ द्वारा प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर का १३९ वाँ व्यास पूजा महोत्सव
फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी, रविवार, ५ गोविन्द, ५२५ श्रीगौराब्द, १२ फरवरी २०१२
स्थान : श्रीरूपानुग सेवाश्रम, श्रीराधाकुण्ड * फोन : ०९४११०६५०७६, २९६२२८१

★ श्रीव्यासपूजा परिचालक समिति ★

संरक्षक : **त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज**
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् गोपानन्द वन गोस्वामी महाराज
सभापति : श्रीमद् भक्तिचकोर श्रौती महाराज (नंदगाँव * मो. 9917612667)
उप-सभापति : श्रीमद् भक्तिविदग्ध भागवत महाराज (नंदगाँव * मो. 9411063669)
कार्यालयाध्यक्ष : श्री तमालकृष्ण ब्रह्मचारी (श्रीइमलीतला महाप्रभु मन्दिर, वृन्दावन * मो. 9410041011)
युग्म महासचिव : श्रीमद् प्रियानन्द वन महाराज (भजन कुटीर, वृन्दावन * मो. 9897464841)
श्रीअजितगोविन्ददास ब्रह्मचारी (श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन * मो. 9536626195)
सचिव : श्रीमद् भक्तिउज्ज्वल राद्धान्ती महाराज (श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, वृन्दावन * मो. 9456654302)
संयुक्त सचिव : श्रीमद् भक्तिप्रबुद्ध दण्डी महाराज (वृन्दावन * मो. 9760133741)
कोषाध्यक्ष : श्रीमद् सच्चिदानन्द वन महाराज (भजन कुटीर, वृन्दावन * ✆ 2442434, 9997130440)
उप-कोषाध्यक्ष : श्रीमद् भक्तिसुन्दर पद्मनाभ महाराज (श्रीकृष्ण चैतन्य मिशन, वृन्दावन * मो. 9997776050)
संयोजक : श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी एम.ए., एल-एल.बी. साहित्यरत्न (मो. 9997810369, 09602865627)

विरह सम्वाद : हमारे ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ के कार्यालयाध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिविकास गोविन्द महाराज दि. ८ जुलाई २०११, शुक्ल सप्तमी को नित्यलीला में प्रवेश कर चुके हैं। संघ के सभी सदस्य उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे नित्यधाम से हमें सदैव संरक्षण प्रदान करते रहेंगे।

संसार में विद्वत्-प्रतिभा अवश्य ही मनुष्यों को ऊँची पदवी पर ले जाते हैं या असाधारण सम्मान प्राप्त करा देते हैं। परन्तु ऐसी विद्वत्ता के साथ यदि किसी महात्मा के अन्दर भगवद् भक्ति का प्रकाश हो जाये तो उसे 'सोने में सुहागा' जैसा समझना चाहिए। यदि कोई 'मूर्ख' व्यक्ति भजन करे तो उसको 'विद्वान्' भक्तों से सर्वदा शास्त्र श्रवण करना चाहिए। शास्त्र श्रवण करने पर उनका भजन यथार्थरूप से हो पायेगा। सात्वत-भक्तिशास्त्र या पराविद्या को साधारण भोगपरक-अपराविद्या के साथ समान मानने पर जीव की भक्ति नहीं बढ़ सकती। मूर्ख भक्तों को भगवद् भजन के लिए 'सन्मुखरिता भागवती वार्ता' श्रवण करना ही एकमात्र सहायक है; नहीं तो भजन की प्रवृत्ति दिन-दिन क्षय होने से प्राकृत-सहजिया धर्म आक्रमण कर, उनको भजन से गिरा देते हैं। प्राकृत-सहजिया लोग साधारणतया अत्यन्त मूर्ख होते हैं। वे अपने को 'भजनविज्ञ' अभिमान करते हुए शास्त्रों के साथ विरोध कर विशृंखल हो जाते हैं और

'साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, हृदये करिया ऐक्य।'

आदि महाजनों के मंगलमयी वाणी से दूर हट जाते हैं।

-श्रील प्रभुपाद

श्री चै. भा. आदि १२/१९

गौड़ीय भाष्य

प्राक्कथन

गुरु वर्गों की असीम अनुकम्पा और श्रील प्रभुपाद की प्रचुर करुणा से ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ द्वारा यह प्रभुपाद स्मारिका सप्तम अंक के रूप में प्रकाशित हो रही है। इस वर्ष हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा में भी इनका प्रकाश हुआ है। श्रील प्रभुपाद की वाणियाँ और व्यापक रूप में प्रचार करने के लिए ही यह कदम उठाया गया है। ब्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघ के सदस्यों किसी एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र में आबद्ध नहीं है। अपितु श्रील प्रभुपाद के विशाल पारमार्थिक परिवार के जो भी सदस्य शरीर या मन से ब्रजवास कर रहे हैं, सभी संघ के सदस्य हैं, ऐसा मानना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी प्रभु ने हमें ब्रज में वास करने का आदेश प्रदान किया है। प्रभुपाद के शिष्य-प्रशिष्य धारा में हम सभी को रूपानुग होना अनिवार्य है। रूपानुग किस प्रकार से व्यासासन पर बैठकर गुरु के कार्य करेंगे, यह श्रील प्रभुपाद ने अनौखे दृष्टान्त के द्वारा प्रदर्शित किया। शास्त्र ज्ञान हीन वैष्णव कहीं प्राकृत सहजिया पन्थ में न चले जायें; इसलिए इस युग के विद्वानों में अग्रणी श्रील प्रभुपाद ने हमें नाम-संकीर्तन के साथ वेद-शास्त्रों की चर्चा के लिए प्रोत्साहित किया है। वेदों के चरम प्रतिपाद्य वस्तु है श्रीनाम-सेवा। रूपानुग धारा में श्रीनाम-सेवा की पद्धति प्रभुपाद की वाणी व आचरण में स्वच्छ स्फटिक की तरह प्रकाशित है। वर्तमान समय रूपानुग धारा में नाम भजन के बारे में जो कुछ गलत धारणायें प्रसारित हो रही हैं, उनकी सही दिशा में लाने के लिए श्रील प्रभुपाद की वाणी सबसे अधिक उपयोगी व शक्तिशाली है, ऐसा हमारा विश्वास है। हमारे यह प्रयास के द्वारा गुरुवर्ग प्रसन्न होवें, श्रील प्रभुपाद की कृपा हमें प्राप्त होवे और श्रील प्रभुपाद-परिवार के सभी सदस्य उत्साहित होवें, ऐसी आशा के साथ उन सभी के चरणों में नमन करते हुए वैष्णवों के कर-कमलों में यह स्मारिका अर्पण कर रहा हूँ।

श्रीगौर-सरस्वती किंकरानुचर

त्रिदण्डि भिक्षु

श्रीभक्तिविदग्ध भागवत

५ गोविन्द, ५२५ श्रीगौराब्द

१२ फरवरी, २०१२

* सूची-पत्र *

१.	व्यास पूजा के अवसर पर श्रील प्रभुपाद का प्रतिभाषण	५
२.	श्री रूपानुग की चित्तवृत्ति	१३
३.	निर्जन भजन	१३
४.	राधाकुण्ड के तट पर श्रील प्रभुपाद (प्रातःकाल)	१४
५.	श्री नाम भजन	२२
६.	चित् कर्णवेध संस्कार	२४
७.	श्रीराधाकुण्ड के तट पर श्रील प्रभुपाद (अपराह्नकाल)	२५
८.	मन्त्र और नाम	३०
९.	महामन्त्र	३१
१०.	लीला स्मरण	३२

व्यास पूजा के अवसर पर

श्रील प्रभुपाद का प्रति-भाषण

श्री गौड़ीयमठ, नं० १ उल्टाडिङि जंक्सन रोड, कोलकाता

अपराह्नकाल, श्री कृष्णा पंचमी ४४१ श्री गौराब्द, १० फरवरी १९२८

महाभारत के प्रारम्भिक मंगलाचरण करते समय हम यह श्लोक पाठ करते हैं -

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

हम भी आज वर्ष के प्रारम्भ में श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास का जयगान करें। श्रीमद्व्यास के आराध्य देव हैं श्री नारायण। वे पुरुषोत्तम, परम पुरुष, महाप्रभु हैं और उनकी चित् शक्ति का रसमयी प्रकाशरूपी सरस्वती देवी ही नारायणी हैं। यह युगल-नमस्कार के पश्चात् श्रीगुरुदेव यानी श्रीव्यास का जयगान करना ही सनातनी प्रथा है।

सर्वलोकपितामह भगवान् पुरुषोत्तम का नरस्वरूप और उनका प्रतिनिधि स्वरूप चतुर्मुख ब्रह्माजी ही इस प्रपंच के आदि कारण हैं। श्रीविष्णुस्वामीपाद के परम्परा के अनुयायी श्रीधर के वचन हैं—

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।

यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे॥

आदि महान्त-गुरु श्री चतुर्मुख ब्रह्मा जी ने श्री नृसिंह भगवान् की संवित् शक्ति को अपने हृदय में धारण किया था और सरस्वती देवी ने ब्रह्मा जी के चारों मुख से चारों वेद का गान किया था। वही गीत श्री नारद जी ने श्रवण किया था। श्री नारद जी ने वही गीत कीर्तन किया जिसके कारण श्रीव्यास देव जी वही सुन पायें।

पुरुषोत्तम भगवान् श्री नारायण के चरण सेवा के लिए अनुकूल या प्रतिकूल भाव से दो अलग प्रणालियाँ हैं। अपने शिष्य परम्परा में आगे आने वालों को मंगल के लिए श्रीव्यास देव ने दोनों प्रणालियों को 'अक्षर' नाम देकर उससे सारे 'क्षर-धर्म' दूर किया था।*

---

* भगवान् की चरण सेवन जिस तरह से क्यों न किया जाय उसका फल संसार से मुक्ति अवश्य मिलेगी। परन्तु अनुकूल अनुशीलन की ही उत्तमा भक्ति के रूप में मानी जाती हैं जिसके फलस्वरूप जीव नित्यधाम में पहुँचकर भगवान् की सेवा में लग जाते हैं। अन्यथा प्रतिकूल अनुशीलन करने वाले ब्रह्म ज्योति के अन्दर अपना परिचय खो बैठते हैं। परन्तु इन दोनों अवस्था में ही जीव क्षर-धर्म यानि 'च्युत होने के योग्य' नहीं रहते। -सम्पादक

भगवान् विष्णु, जिन्होंने आदि कवि ब्रह्मा जी के हृदय में चेतनमय ज्ञान रूपी सुन्दर सम्पत्ति प्रदान की थी, श्री नृसिंह लीला उनकी ही लीला है। श्रीविष्णुस्वामिपाद के शिष्य परम्परा में स्थित श्रीधर जी के इष्टदेव श्रीनारायण हैं। परन्तु इसी कारण अपने अनुयायियों के लिए श्रीधर जी श्रीनारायण की जगह श्रीनृसिंह-दर्शन की व्यवस्था देते हुए यह श्लोक प्रकाशित किया।

आज श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के चरणों को अनुसरण करते हुए हम श्रीव्यासदेव की पूजा में अर्घ्य प्रदान करने के लिए सभी को आवाहन करते हैं। इस अर्घ्य प्रदान के द्वारा आदि गुरु श्री ब्रह्मा जी, उनके अनुयायी श्री नारद जी, उनके अनुयायी श्री वेद व्यास जी, श्रीव्यास जी के अनुयायी श्रीमद् आनन्दतीर्थ जी, श्रीनित्यानन्द जी, श्रीअद्वैताचार्य जी और उनके परिकर सभी गौड़ियों की पूजा हो रही है। एक दिन श्री नवद्वीप में जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द प्रभु ने स्वयं इसी पूजा का अनुष्ठान किया था। सद्गुरु परम्परा के अनुसार यह हमारे भक्ति अनुष्ठान का एक प्रधान कर्त्तव्य है।

आचार्य श्रीव्यास जी के मुख निःसृत वेदों का ही कीर्तन करते हैं। हम भी आज उसी का अनुसरण करते हुए श्रीगुरुचरणकमलों में अंजलि प्रदान करने के लिए तैयार है। जड़ विद्या के अधिष्ठात्री देवी को प्रसन्न करने के लिए बच्चे शुक्ला पंचमी के दिन अंजलि प्रदान करते हैं। आज कृष्णा पंचमी के दिन परा विद्यादेवी के चरणों में हम अंजलि अर्पण कर रहे हैं। वह अंजलि श्रीव्यास जी के कर कमलों के द्वारा उद्भासित है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

यह मंत्र श्रवण करने की योग्यता लाभ करने के कारण ही हम श्रीव्यास-पूजा-यज्ञ का आवाहन करते हैं।

एकदिन श्रीमद् आनन्दतीर्थपाद ने श्रीव्यासपूजा में नियुक्त रहते हुए भी श्रीव्यासासन पर बैठकर आचार्य का कार्य किया। उनके अनुयायी सम्प्रदाय उनके अनुसरण का परिचय देते हुए सद्गुरु-परम्परानुसार पहिले से ही श्रीव्यासासन पर बैठकर 'श्रीमद् भागवत-तात्पर्य' का व्याख्यान करते आ रहे हैं। सांसारिक विचारानुसार अवश्य ही अपनी अयोग्यता की धारणा हमें व्यासासन पर बैठने में बाधक है परन्तु श्रीव्यासदेव जी और श्रीपाद श्रीमन् मध्वाचार्य जी के चरणों में हमारा यही निवेदन है कि कभी भी श्रीगुरुदेव की आज्ञालंघन जैसी दुष्प्रवृत्ति के वश होकर हम गुरुचरणों की सेवा से विमुख न हो जाय। श्रीमध्वमुनि जी ने श्रीव्यासदेव जी की पूजा का आदर्श दिखाते हुए अस्सी वर्ष तक गुरु लीला का अभिनय किया। एक समय वे भीम के रूप में प्रकट होकर महाभारत के युद्ध में कृष्ण-विद्वेषियों को

गदाधर भगवान् की सेवकत्व का प्रदर्शन करते हुए कृष्ण सेवा का अभिनय किया। और किसी समय वे बजरंग जी के रूप में भगवान् श्री रामचन्द्र जी के प्रतिपक्ष दमन कार्य में सहायता की। वे ही वायु के रूप में सदा के लिए वैकुण्ठ धारणकर अप्राकृत जगत् को नित्य अवस्थान विलुप्त नहीं होने देते। गत शुक्ला नवमी तिथि के दिन श्रीमद् आनन्दतीर्थ का अन्तर्धान दिवस था। उसी दिन उनकी पूजा करने के बाद उनके ही परम्परा में आये हुए मेरे गुरुवर्ग★ ने आज श्रीव्यासपूजा के पुरोहित के रूप में मुझे वरण किया है। यह उनके महाभागवतों को अनुसरण करने की लीलामात्र है। मेरे असली स्वरूप के अनुसार मैं अपने को श्रीरूपानुगजनों के एक अयोग्य व असम्भाष्य नित्यदास के रूप में जानता हूँ। अत: अयोग्यता के कारण ही मेरा यह अस्थायी अनुशासनहीनता देखा जाता है। श्रोतृ वर्ग मेरी यह धृष्टता क्षमा करने पर ही मैं उनके सेवा में नियुक्त होने का अधिकार प्राप्त करूँगा। मेरा कंठरोध करने से मुझे श्रीव्यासपूजा का अधिकार नहीं मिलेगा। इसलिए आपके निकट मेरी विनय-पूर्ण प्रार्थना यह है कि आप अनगिनत महापुरुषों को श्रीव्यासपूजा करने का अधिकार दिया है।

अत: मुझे भी एक क्षण के लिए उसी पूजा में अधिकार प्रदान करें।

श्रीव्यासपूजा के पुरोहित के रूप में मैं तपस्या के बल पर व्यासासन पर आरोहण नहीं कर रहा हूँ। मैं अपने श्रीगुरुदेव तथा उनके पूर्व गुरुवर्ग की तृप्ति के लिए जो आराधना कर रहा हूँ, वह अवतारवाद या अवरोह वाद के धारणा में स्थित है❖। वाह्य जगत् में ज्ञान का प्रयास द्वारा अजित वस्तु● प्राप्त करूँगा, ऐसी आशा कर मैं वंचित नहीं होना चाहता हूँ। इसलिए श्रीचतुर्मुख ब्रह्मा जी के सम्प्रदाय का आदेश, श्रीव्यास जी के अनुयायियों की आज्ञा एवं रूपानुगजनों के अपार करुणा के प्रति श्रद्धा युक्त होकर श्रीरूप कथित भक्तिपथ के थोड़ा सा वर्णन के द्वारा मैं श्रीव्यासजी के चरणों में आज अंजलि प्रदान कर रहा हूँ। केवल मात्र श्रीव्यास जी के चरणों में ही नहीं अपितु श्रीव्यास जी के अनुयायी गौड़ीय गुरु वर्गों के चरणों में भी अंजलि दे रहा हूँ। यह अंजलि प्रदान करने के लिए अधिरोहवादी के निन्दनीय कार्य को भी

★ श्रील प्रभुपाद वैष्णवोचित दीनता का प्रदर्शन करते हुए अपने शिष्य तथा अनुयायियों को ही 'गुरुवर्ग' कहकर सम्बोधित किये हैं।

❖ अपने तपोबल या भजनबल से भगवान् को प्राप्त कर लेंगे या स्वयं गुरु बन जायेंगे यह विचार छोड़कर भगवान् या उनके अपने जनों से कृपा शक्ति अवतरित होकर किसी को गुरुत्व प्रदान करें या भगवद् अनुभव सम्पन्न करें यह अवरोह या अवतारवाद है।

● अजित वस्तु भगवान् है जिनको कोई जय नहीं कर सकता। -सम्पादक

अपने गुरु के आज्ञानुसार परिहार करने की धृष्टता दिखा रहा हूँ।* मेरे इस कार्य के द्वारा 'तृणादपि सुनीच' धर्माचरण उपदेश की अवहेलना नहीं हो रही है। श्री रूपानुगों की महिमा का बखान करते हुए मुझे वृक्ष के समान सहनशील होने में कोई बाधा नहीं आ रही है। किसी सांसारिक प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होने की दुराशावश मैं श्रीगुरु के वचनों का लंघन नहीं कर रहा हूँ। अत: श्रीगुरुगौराङ्ग द्वारा कथित मानदधर्म अपनाने की अभिलाषा से मैं सांसारिक नाप-तोल परिहार कर वैकुण्ठ-कथा की ही पुनरावृत्ति कर रहा हूँ। इस अनुष्ठान के गुण दोष का फल-भोक्ता मैं नहीं हूँ। अत: फल या दक्षिणा के रूप में मैं सांसारिक निन्दा या प्रशंसा के प्रार्थी नहीं हूँ। भगवान् के नित्य परिकर श्री रूप, उनके अनुयायियों और भविष्य में आने वाले रूपानुगगण सभी मेरे पूज्यनीय श्रीगुरुदेव हैं; श्रीब्रह्मा-नारद-व्यास- मध्व-नित्यानन्द के आश्रित, आश्रय जातीय भगवद् विग्रह स्वरूप हैं,** यदि नित्यकाल के लिए उनके आश्रित हो पाऊँ तभी मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। मेरा सांसारिक भवरोग दूर हो जायेगा। तब मैं भुक्ति और मुक्ति दोनों चुड़ैल को जननी के बजाय पूतना के रूप में जान पाऊँगा। ज्ञान-वैराग्य आदि भक्ति जननी के सुपुत्र बन कर कभी माँ की सेवा में उदासीन न बने, अपनी जननी की 'दासी' बुद्धि न करें-मेरी यही प्रार्थना है।

चैतन्यदेव ने श्रीरूप गोस्वामी प्रभु को भक्ति के स्वरूप से परिचय कराया और श्रीसनातन प्रभु को भक्ति सिद्धान्त आचार्य के रूप में 'सम्बन्ध-शिक्षा' प्रदान किया। यह सनातन-शिक्षा उज्ज्वलता के साथ श्रीजीव पर प्रतिबिंबित होकर भागवताचार्य के रूप में प्रकाशित है। रूपानुगत्व मूर्तिमती भक्ति का रूप धारण कर, श्रीरघुनाथ प्रभु जी में है। वहाँ पर स्वरूप जी के अनुगत्य का प्रकाशमय सुन्दर आचार्यविग्रह के रूप में प्रकटित रहकर श्रीरघुनाथ प्रभु जी का वह रूपानुगत्व गौड़ियों के हृदय सरोवर में आशा रूपी जल का निरन्तर परिपूर्ण कर रहे हैं। श्रीरूपानुग श्रीजीव के हृदयरूपी तट उस भक्तिरसामृत समुद्र का परिरक्षक हैं। और सुसिद्धान्त-विरोध तथा अनर्थरूपी गन्दे पानी को प्रतिरोध करते हुए विराजमान हैं।

श्रीरूपजी ने जो श्रीचैतन्य-भक्ति का उपदेश दिया है वह उनके लेखन में उद्भासित है। 'दुर्गम संगमनी' नाम के श्रीजीव ने जो टीका रचना की है वह पंचरात्र-मत का खण्डन नहीं कर रही है। जो सोचते हैं कि श्रीजीव ने पंचरात्र-मत के साथ विरोध करने के लिए ही वंश-परम्परागत वर्णविचार और स्वकीयवाद आदि का स्थापना कर श्रीरूपानुगत्व में थोड़ा बहुत परिवर्तन किया, श्रीरूप-रघुनाथ के अनुगत जनगण उनके ऐसे निकृष्ट विचार को मानते नहीं है। यह घृणित विश्वास एक बीमारी जैसा है। श्रीमद् कविराज गोस्वामी और श्रीमन् नरोत्तम प्रभु जैसे गौड़ीय गण ही ऐसी बीमारी के चिकित्सक हैं।

---

* अधिरोहवादी यह है कि जो अपने प्रयास से परम तत्त्व को जान लेने का प्रयत्न करते हैं। श्रील प्रभुपाद और सभी वैष्णव आचार्यों ने ऐसे मतवाद को घृणा के साथ परित्याग करने की शिक्षा दी।

** श्री गुरुतत्त्व को आश्रय जातीय भगवद् विग्रह कहा जाता है। -सम्पादक

'मनः शिक्षा' 'विलास-कुसुमांजलि' आदि श्रीरूपानुगत्व का सार-निर्यास स्वरूप हैं। इसी कारण मेरी प्रार्थना है कि श्रीव्यासासन पर बैठकर श्रीजीव के अनुगत रहते हुए हमें शुद्ध जीवानुगत्य का परिचय प्राप्त हो और स्वरूप के श्री रघुनाथ का अनुगत होकर व्यासासन पर श्रीव्यासपूजा के उद्देश्य से सांसारिक चंचलता दूर हो तथा अप्राकृत सेवा प्रवृत्ति का उदय हो। श्रीजीव रूपी कलश द्वारा श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु से लाया गया स्वरूप-अनुगत रघु के दासता हमें कामादि छः रिपु के अनित्य दासता रूपी डकैत से रक्षा करें, हमें अमरता के जल में स्नान करायें, हमारी भोग पिपासा को निवृत्त करें।

गुरौ गोष्ठे गोष्ठालयिषु सुजने भूसुरगणे
स्वमन्त्रे श्रीनाम्नि व्रजनवयुवद्वन्द्व स्मरणे।
सदा दम्भं हित्वा कुरु रतिमपूर्वामतितराम्
अये स्वान्तर्भ्रातश्चटुभिरभियाचे धृतपदः॥

श्रीचैतन्यदेव के निकट श्रवण करते समय श्री रूप गोस्वामी जी अपने पूर्व परिचय के अनुसार 'दविरखास' नाम से जाने गये थे। भक्तिस्वरूप-विज्ञान की जानकारी रखने वाले उनके अनुयायी सम्प्रदाय उनको 'दविरखास' न जानकर श्रीमन् महाप्रभु के द्वारा पुकारे गये 'श्रीरूप' के नाम से जानते हैं। श्रीरूप ने गौर सुन्दर के निकट भक्ति-शिक्षा ग्रहण करने का अभिनय किया। जिस शिक्षा को उन्होंने श्रवण किया, अपने अनुयायी सम्प्रदाय पर कृपा कर वही शिक्षारूपी भक्तिरसामृतसिन्धु में अधिकार प्रदान किया है। वे जिनसे भक्ति-सिद्धान्त को प्राप्त किये वह सम्बन्ध-तत्त्व श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्णचैतन्य बनकर 'साकर मल्लिक' को सनातन स्वरूप में स्थापना की। इसीलिए ही श्रीरूप ने श्रीसनातन प्रभु को अपना गुरु कहा। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभु इसी कारण ही अपने 'विलाप कुसुमांजलि' में श्रीसनातन को 'कृष्ण सम्बन्ध कारक' कह के पुकारा। जिस कारण श्रीकविराज गोस्वामी प्रभु ने आपको 'भक्तिसिद्धान्ताचार्य' कहा।

वह भक्तिसिद्धान्त श्रीरूप की लेखनी से निःसृत होकर भक्तिरसामृतसिन्धु के निकट जाने का मार्ग बन गया और श्री रूप तथा श्रीजीव के अनुयायी सम्प्रदाय के शुद्ध सात्विकी भाव का प्रकाश युक्त हृदय में उदित होकर भक्तिरसामृतसिन्धु को पान करा रहे हैं। जो श्रीजीव गोस्वामी जी के द्वारा अपनी-अपनी सांसारिक स्वार्थ बनाने का प्रयत्न किया वे दुर्गम पथ में भ्रमित होकर भक्तिरसामृतसिन्धु में डुबकी नहीं लगा पाया। श्रीजीव गोस्वामी को 'श्री रूपानुग' कहने में जो संकोच करते हैं वो कभी भी अपने को 'रूपानुग' कहलाने में समर्थ नहीं हो सकते। श्रीदास गोस्वामी द्वारा प्रदर्शित रूपानुग भजन-प्रणाली के अनुसरण करने में वो कभी भी योग्यता प्राप्त नहीं कर पायेंगे। श्रीदास गोस्वामी प्रभु के अनुगत होने से

अलावा श्रीजीव के अनुयायियों को और कोई गति नहीं है। सम्बन्ध-ज्ञान का उदय होने पर ही भक्ति-प्रवृत्ति होती है। भक्ति-वृद्धि के क्रमानुसार भक्ति की विशेषता, विचित्रता, विलास आदि भक्तिमान् के सम्बन्ध-ज्ञान को परिष्कृत करती हैं।

भगवान् रसमय वस्तु हैं। उनकी माया द्वारा रचित वस्तु में जो रस है, वो अनित्य, अज्ञानता से लिप्त और निरन्तर आनन्द प्राप्ति का बाधक है। अनर्थयुक्त जीव स्थूल और सूक्ष्म उपाधियों से ग्रस्त है। ये वास्तव वस्तु श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध स्थापन करने में असमर्थ होकर, उनके साथ उनकी माया रचित जड़शक्ति के परिणाम को अन्तर न समझकर उसी में ही रम जाते हैं। ऐसा विवर्त्त* में फँसकर माया-विचित्रता शून्य अवस्था को यह जीव 'ब्रह्म' मानने लगते हैं और उसके साथ एक हो जाना ही अपना 'अभिधेय' समझने लगते हैं और कोई-कोई जीव विवर्त्त में फँसकर अपने को सांसारिक सुखभोग के मालिक बना कर अपनी इन्द्रियों के द्वारा अपना अनर्थ-युक्त अवस्था का ही पोषण करते रहते हैं। यह दोनों प्रकार के अभक्ति का अनुष्ठान भक्तिस्वरूप से सम्पूर्ण पृथक है। रसमयी भक्ति का परिणाम कभी भी नीरस या विरस युक्त वस्तु नहीं हो सकती। जीव का जब तक स्वरूप-ज्ञान नहीं रहता है, तब वे कभी-कभी सांसारिक भोग (भुक्ति) और मुक्ति को आवश्यक समझते हैं। फिर कभी-कभी भक्ति-स्वरूप का ज्ञान नहीं रहने के कारण भक्ति को साधन और भुक्ति या मुक्ति को साध्य के रूप में समझते हैं। वास्तव में शुद्ध जीव अपने भजन के बल से भुक्ति या मुक्ति को साध्य न मानकर उनके प्रभु बन जाते हैं। प्रभु होकर परम ऐश्वर्यमयी भक्ति की सेवा में ही उन दोनों को नियुक्त कर देते हैं। भक्ति का सेवक के रूप में ही कर्म और ज्ञान स्थित है। शुद्ध भक्ति कदापि कर्म और ज्ञान की दासी नहीं बनती है। कर्म की विरसता और ज्ञान की नीरसता रसमयी भक्ति की विपरीत दिशा में स्थित है। भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ में भक्ति का स्वरूप निर्णय करते हुए अनुकूल कृष्णानशीलन की ही प्रधानता दी गयी है। गौणीभाव से उसी प्रधानता को समर्थन के लिए प्रतिकूल भावों के बारे में निषेधपरक वाक्यों का वर्णन है। कृष्ण का अनुकूल अनुशीलन कहने से विष्णु भगवान् की अलग-अलग सेवा-प्रकाश को भी समझना चाहिए, यह सारी सेवाएं कृष्ण का वैभव आंशिक रूप में प्रकाशित करते हैं। कृष्ण की प्रभुता और विभुता हरण कर प्रापंचिक बुद्धि की चंचलता से जीव के अन्दर जो सारे आसुरिक भावों का उदय होता है, उसमें अभक्ति का स्वरूप ही देखा जाता है। इस कारण प्रतिकूल कृष्णानुशीलन के बारे में अनर्थ युक्त विवर्त्तवादी जीव अपने को निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान में लगा देते हैं। अतः प्रभु और दासरूप सेव्य-सेवक भाव नहीं रहने से जो दुर्गति होती है, ऐसी गलत

★ एक वस्तु में दूसरी वस्तु का ज्ञान होना ही विवर्त्त कहा जाता है - जैसे सीपी में चाँदी का या रस्सी में सर्प का भ्रम होता है। -सम्पादक

धारणा ही कृष्ण का प्रतिकूल अनुशीलन में प्रधानता प्राप्त करते हैं। कंस, जरासन्ध आदि इस प्रपंच में दुष्ट प्रवृत्ति का अवतार हैं। ये भक्तिरहित होकर, भुक्ति, मुक्ति को आवश्यक मानते हुए जो प्रतिकूल कृष्णानुशीलन करते हैं, वह पूर्व कथित निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान का ही इस प्रपंच में अवतरण मात्र है।

गुरु, गोष्ठ, धामवासी, वैष्णव, ब्राह्मण, नामकीर्तन और मंत्रोच्चारण ये सातों वस्तु अनुकूल भाव से ब्रज के नवयुगल-जोड़ी की सेवा कर सकते हैं। प्रतिकूल भाव लेकर अपने स्वयं को सेव्य बनाने की प्रबल इच्छा होने पर वे सारी वस्तुओं की कृष्ण सेवन-भाव के बाधक बन जाते हैं। अनुकूल-अनुशीलन करने वाली सातों वस्तुऐं भगवद् भक्ति का सहायक हैं, परन्तु घमंड आने पर इन सारी वस्तुओं का वास्तव विचार को ढककर प्रापंचिक दर्शन के द्वारा कर्म या ज्ञान के गलत मार्ग पर चला देते हैं।

रस उदय होने के पूर्व अवस्था को 'साधन-भक्ति' कहा जाता है अर्थात् वे रस के अनुदित भाव मात्र हैं। रस का उदय होने पर भक्ति फिर साधन भक्ति के नाम से परिचित न होकर भाव भक्ति के नाम से जानी जाती है। रति से पहले स्थायीभाव को 'श्रद्धा' कहा जाता है। स्थायीभाव के साथ चारों सामग्रियाँ सम्मिलित होने पर रस का उदय होता है। सामग्री रहित असम्मिलित रति की प्रारम्भिक अवस्था में जो साधन दशा, उसी में हम 'श्रद्धा' यानी दिव्य साहित्य में सुदृढ़ विश्वास देखते हैं।

प्रापंचिक साहित्य में जो अप्राकृत वस्तु को विवर्त्त देखने में मत्त हैं वे जड़ीय अलंकारिक के आवरण द्वारा ठगे जाते हैं। ऐसी अवस्था में 'अज्ञ भक्त' होने पर भी अपने को 'असली भक्त' के रूप में गिनते हैं। भक्तिरसामृतसिन्धु में डुबकी नहीं लगाने से तटस्थ जीव के अनुयायी अपना रूपानुग परिचय को भूल जाते हैं और श्रीरूपानुग 'स्वरूप के रघु' के अनुगमन से हमेशा के लिए वंचित रहते हैं, रूपानुगगणों के चरणों में अपराध कर बैठते हैं। ऐसे बद्धजीव अपनी आत्मवृत्ति यानी भक्ति की खोज न प्राप्त कर कभी श्रीजीव का विरोध करते हैं और कभी रूपानुग-रघुनाथ का विरोध कर बैठते हैं। इस विवर्त्त में फँस जाता है कि वैष्णवों का पक्षपात दोष है। ये भ्रम ही उनको रूपानुग धर्म आचरण के लिए बाधक बन जाता है। कभी कृष्ण-सेवा को छोड़कर और अभिलाषा, कभी अपने सांसारिक भोग का अनुसन्धान करने वाले कर्म का आवरण, अपने स्वरूप का त्याग करने वाले प्रच्छन्न बौद्धमत यानी मायावाद, भक्ति के अनुसन्धान में बाधा देते हैं।

भक्तिरस तरल है। ये प्रापंचिक रस जैसा शुष्क नहीं हो सकता है। नित्य रस-समुद्र का क्षय नहीं है, ये एक छोटा तालाब जैसा नहीं है। जिनका भजन किया जाता है वे भगवान् कोई नापा-तोला राज्य के वस्तु नहीं है इसलिए भगवत् सेवा रूपी अमृत का सागर अनन्त वैकुण्ठ-रस-समुद्र है।

भवरोग से पीड़ित भोक्ताजीव अनर्थों से मुक्त होकर यदि भक्तिरसामृतसिन्धु में डुबकी लगा सके तभी उनकी सारी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। ऐसा होने पर कर्म, ज्ञान आदि का आवरण या अन्याभिलाषारूप स्वतन्त्रता का दुरुपयोग आदि भक्ति-पथ पर कांटे नहीं बिछाते हैं। पूर्व दुष्कृति के

कारण जिनकी भक्तिरसामृतसिन्धु में डुबकी लगाने की रुचि नहीं होती है वे श्रीरूपानुग की दया को समझ नहीं पाये ऐसा मानना पड़ेगा। श्रीदामोदरस्वरूप जी ने गौरसुन्दर को दयानिधि कहे हैं। भगवान् गौरसुन्दर ने भक्तभाव स्वीकार कर उस भक्तिसमुद्र का शोभा दिखाने के लिए ही अपने सेनापति श्रीरूप को श्रीव्यासासन पर बैठाया। इस कार्य के द्वारा अपने प्रतिकूल अनुशीलन करने वाली जनता का भी कल्याण किया। श्रीरूपानुगजन ही श्रीमद् भागवत की पुनरावृत्ति करने में समर्थ है। अभक्तों के द्वारा कथित भागवत कथा माया-मरीचिका के समान है। उसी कथा का अनुसरण कर कभी भी भक्तिरसामृतसिन्धु का मार्ग नहीं मिल सकता। अत: **विद्या-वधू-जीवनस्वरूप श्रीकृष्ण संकीर्तन करने के लिए रूपानुगत्व ही एकमात्र मार्ग है।**

'पराविद्या' शब्द से भक्ति का ही उद्देश्य किया गया। ये भक्ति प्राप्त करने की इच्छा लेकर आज मैं श्रीव्यास आदि गुरुओं के चरणों में आया हूँ। वे मेरे अभक्ति-पूर्ण मरू जैसे हृदय में कृपा का जल सिंचन कर मुझे अपने नित्य दास के रूप में स्वीकार करें और सेवा का अधिकार प्रदान करें। श्रीचैतन्यदेव के द्वारा कथित 'महाभागवत-लक्षण' की बातें स्मरण कर, मैं समझ रहा हूँ।

जाँहारे देखिले मुखे आईसे कृष्ण-नाम।
ताँहाके जानिओ तुमि वैष्णव-प्रधान॥

आप सभी ऐसे ही महाभागवत हैं; इसलिए मुझे आज श्रीव्यासपूजा का अधिकार प्रदान किया। इसके बदलेमें आप जैसे महाभागवतों की दासता मैं हमेशा के लिए नियुक्त रहूँगा। इसके लिए और कोई वेतन मेरे प्रार्थनीय नहीं है।

अन्त में प्रति निवदेन के रूप में मेरा यह कहना है कि जो सारी बातें मुझे उद्देश्य कर कहा गया है ये आपके ही महत्व का परिचय देती हैं। प्रापंचिक विचार से मुझमें ऐसी कोई योग्यता नहीं है। ये सारी बातें मेरे पूर्व गुरुओं को मिलनी चाहिए। अत: श्रीगुरुदास के रूप में, मैं ये सब बातों को उनके चरण कमलों में समर्पण कर रहा हूँ। बाहिरी बुद्धि विचारों द्वारा परिचालित होकर उन वाणियों को हड़प लेने में, मैं समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि प्रभु के आदेशानुसार मैं तिनका से भी नीच, 'तृणादपि सुनीच' दुबला-पतला हूँ। ऐसा गुरुभार वहन करने में योग्य नहीं हूँ। अत: ये सारी बातें श्रीमद् गुरुतत्त्व के उद्देश्य में भेजने के अलावा मेरा और कोई उपाय नहीं है।

भवता महता समर्पितं नहि धर्तुं प्रभवामि वैभवम्।
उचितं गुरवेऽहं अद्य तं सुवराकः प्रणयात् समर्पये॥

(आप सभी महान् व्यक्तियों ने मुझे यह सम्पदा प्रदान की है। मैं स्वयं इसे धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। अत: उचित समझकर आज बहुत छोटा, मैं, प्रेम के साथ अपने गुरुजी को यह अर्पण करता हूँ।)

❖

श्री रूपानुग की चित्तवृत्ति

श्री श्री गुरु गौराङ्गौ जयतः

श्री गौड़ीयमठ, कलिकाता

स्नेह विग्रहेषु- ९ अग्रहायन, १३४२, २५ नवम्बर १९३५

आपकी १६ नवम्बर तारीख का पत्र मिला। केनोप निषद में लिखा है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् से निर्देशित शक्ति प्राप्तकर आधिकारिक देवगण अपनी अपनी शक्ति का परिचालन करते हैं। वह शक्ति फिर से वापिस ले लेने पर उनकी अपनी-अपनी शक्ति नहीं रहती। श्रीरूपानुग भक्तवृन्द अपनी शक्ति की प्रति आस्था स्थापन न कर मूल स्थान पर ही सारी महिमा का आरोप करते हैं। हम भी श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीरूप, श्रीभक्तिविनोद व श्रीगुरुचरणकमल के उद्देश्य कर ही सारे कार्य करते हैं। भक्ति पथ छोड़ देने पर अहंकारविमूढ़ भाव हमें निगल जाता है।

नित्याशीर्वादक

श्री सिद्धान्त सरस्वती

निर्जन भजन

नाचो, गाओ भक्तसंगे कर सङ्कीर्तन।

कृष्ण नाम उपदेशि तार सर्वजन॥ (श्री चै.च. आदि ७/९२)

जिन्होंने श्रीगुरुदेव के विचारानुसार अधिकार प्राप्त करते हैं उनके ही श्रीगुरुदेव सजातीयाशय, स्निग्ध, भजनपरायण हरिजनों के साथ नृत्य, गीत और संकीर्तन आदि करने में अधिकार देते हैं। वे लोग ही श्रीगुरुदेव के पदानुसरण करते हुए, अपना भजन मानकर जगत् उद्धार कार्य में नियुक्त होते हैं। **अनधिकारी लोगों ने एकान्त में कृष्णनाम जप करेंगे।** ऐसी उपासना में दूसरों के साथ संग नहीं होता। अधिकार प्राप्त होने पर ही जनसंग अशुभ फल नहीं दे सकता है, दूसरी ओर बहिर्मुख जनता भी नाम की कृपा प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। इस प्रसंग में-

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।

एवं

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।

निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

आदि श्लोकों की चर्चा करनी चाहिए। **-श्रील प्रभुपाद कृत अनुभाष्य**

राधाकुण्ड के तट पर श्रील प्रभुपाद

(प्रातःकाल)

साप्ताहिक गौड़ीय

खण्ड १४ संख्या २२

(९ अक्टूबर १९३५ प्रातःकाल श्रीराधाकुण्ड परिक्रमा के पश्चात् भक्तवृन्द श्रीब्रज-स्वानन्द-सुखद कुंज में श्रील प्रभुपाद के समीप एकत्रित हुए। श्रील प्रभुपाद श्रुति यानी वेद शास्त्रों का बखान प्रारम्भ किया। यह चर्चा तीन दिन तक चली। प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, अपराह्नकाल तथा रात्रि के समय श्रील प्रभुपाद 'हरि-कथा' कहते थे। उनमें से कुछ साप्ताहिक गौड़ीय पत्र में प्रकाशित किया गया था। हिन्दी भाषी भक्त के लिए उन प्रवचनों के अंश हिन्दी में अनुदित किया जा रहा है।)

निरन्तर हरिनाम करने के लिए श्रीकृष्णचैतन्य देव ने हमें शिक्षा प्रदान की है-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

श्रील रूप गोस्वामी जी कहे हैं–

निखिल श्रुति मौलि रत्नमाला द्युति नीराजित पादपङ्कजान्त।
अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं परितस्तां हरिनाम संश्रयामि॥

(वेद शास्त्रों के शिरोमणि-रत्न के ज्योति द्वारा जिनके चरणकमलों की आरती हो रही है, मुक्त पुरुष जिनकी सभी दिशाओं से उपासना करते रहते हैं ऐसा महत्त्वपूर्ण हे हरिनाम प्रभु, मैं सम्पूर्ण रूप से आपका आश्रय ग्रहण करता हूँ।)

यह रूपानुग चैतन्य शिक्षा आचरण करने के लिये–चौबीस घण्टे हरिनाम करने के लिए हम यहाँ आये हैं। धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष कामनारूपी कपट रहते हुए हरिनाम करने का जो नाटक देखा जाता है, वह शुद्ध हरिनाम कीर्तन नहीं है। नाम कीर्तन के साथ ही लीला-कीर्तन सम्भव है। श्रीरूप ने ग्यारह श्लोक रचना किये हैं और श्रीनामाष्टक भी लिखे हैं। उस नामाष्टक का ही प्रथम श्लोक 'निखिल श्रुति'....आदि हैं।

प्रथमं नाम्नः श्रवणमन्तःकरण शुद्ध्यर्थमपेक्ष्यम्।
शुद्धे चान्तःकरणे रूपश्रवणेन तदुदययोग्यता भवति॥
सम्यगुदिते च रूपे गुणानां स्फुरणं सम्पद्येत।

सम्पन्ने च गुणानां स्फुरणे परिकर वैशिष्ट्येन तद् वैशिष्ट्यं सम्पद्यते।

ततस्तेषु नाम-रूप-गुण-परिकरेषु सम्यक् स्फुरितेषु लीलानां स्फुरणं सुष्ठु भवति।

(सर्वप्रथम नामश्रवण के द्वारा अन्त:करण शुद्ध होने पर रूप-श्रवण करने से ही उसी रूप का उदय हो सकता है। सम्पूर्ण भाव से रूप का उदय होने पर गुणों का प्रकाश होता है। गुण का प्रकाश सम्पूर्ण होने के पश्चात् परिकरों की विशेषता जानी जाती है और उस विशेषता का अन्त:करण में प्रकाश होता है। तत्पश्चात् अर्थात् नाम-रूप-गुण-परिकर सभी सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित होने पर लीला का प्रकाश यथार्थरूप होता है।)

यह विचार नहीं छोड़ना। मूल में भूल रहने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। श्रीरूपानुग नाम ग्रहण पद्धति छोड़ देने से नाम का फल 'कृष्ण-प्रेम' नहीं मिलेगा। हम रूपानुग धारा में कीर्तन करने के लिए बैठे हैं। जो दूसरे प्रकार से लीला-कीर्तन करते हैं, हमारी पद्धति उनसे पृथक है।

हमारे चित्त के दर्पण पर भोग और भोग-त्याग रूप अन्याभिलाष, कर्माग्रह और त्यागाग्रह की धूल जन्म-जन्मान्तर से संचित हो चुका है। वैकुण्ठनाम श्रवण करने पर वह सारी धूल दूर हो सकती है। कर्म-ज्ञान-योग या व्रत आदि प्रयासों के द्वारा चित्त-दर्पण की धूल का सम्पूर्ण रूप से मार्जन नहीं होता है।

वैकुण्ठ नाम ग्रहणमशेषाघहरं विदुः।

(वैकुण्ठनाम ग्रहण करने से समस्त पाप सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है।)

हमारी जड़ इन्द्रियाँ अधोक्षज★ भगवान् को अनुभव करने में समर्थ नहीं है। एक मात्र श्री गुरु-पादपद्म से वाणी श्रवण करने पर ही सांसारिक प्रवृत्ति से हम अलग हो सकते हैं। गुरु-पादपद्म और परम्परागत श्रोत पन्थ लंघनकर संसार में जो जैसा चाहे कहते हैं, उस प्रकार से कभी भी हरिनाम कीर्तन नहीं होता।

बद्धजीव हरिनाम कीर्तन नहीं कर सकते। मुक्त पुरुषों से वाणी श्रवण कर यदि सेवा की अभिलाषा जाग्रत हो तब हरिनाम जिह्वा में उदित होते हैं।

मैं सम्पूर्ण रूप से हरिनाम का आश्रय ग्रहण करूँगा। अवैदिक वैष्णव धर्म वास्तव में बौद्ध-भाव का अनुसरण करने वाले वचन चालाकी का गलत मार्ग है। आचार्य शंकर विमुख जनताओं को मोहित करने के लिए अवतार लिये थे। उनकी वेदान्त भाष्य में असाधारण पांडित्य-प्रतिभा प्रकाशित है। मैं उस अवैदिक वैष्णव धर्मों का वचन चालाकी या आचार्य शंकर की पांडित्य प्रतिभा से मोहित न होकर

★ भगवान् हमारी जड़ इन्द्रियों के अनुभव से परे हैं। इसलिये शास्त्र में उन्हें अधोक्षज कहा गया है। -सम्पादक

वैदान्तिक विद्वानों में श्रेष्ठ श्रीस्वरूपदामोदर का अनुगत रहकर वेदशास्त्र का यथार्थ तात्पर्य ग्रहण करूँगा। भगवान् आचार्य के छोटे भाई गोपाल भट्टाचार्य का वेदान्त विचार महाप्रभु को प्रिय नहीं लगा। इसलिए श्रीस्वरूपदामोदर जी वह श्रवण करने में अनिच्छुक रहे। वैदान्तिक सार्वभौम भट्टाचार्य का केवलाद्वैतमत ग्रहण के प्रति आग्रह को महाप्रभु ने परम्पराधारा के विरोधी कहा। प्रकाशानन्द का व्याख्यानुसार वेद या उपनिषद् का अर्थ प्रकृत आस्तिकता का विरोधी है। यह स्वयं प्रकाशानन्द और उनके साथ-साथ काशी के संन्यासी भी समझ पाये थे। श्रुति का यथार्थ तात्पर्य मायावाद नहीं है, परमेश्वर की सेवा का विरोध करना नहीं है।

श्रीमन् महाप्रभु ने कहा–

वेद ना मानिया बौद्ध हय तो नास्तिक।
वेदाश्रये नास्तिक्यवाद बौद्धके अधिक॥

वेद का अवलम्बन कर वेद का असली उद्देश्य भगवत्-सेवा-विधि को ध्वंस करना बौद्धवाद से भी अधिक नास्तिकता है। वेद शास्त्र की चर्चा के नाम पर संसार में बहुत सारे गलत मत वाद प्रवेश कर गया है। मायावादियों की श्रुति या वेदान्त की चर्चा, कुछ दिवस पूर्व आर्यसमाज की वेद व्याख्यान, राजा राममोहन के द्वारा वेदशास्त्र की चर्चा आदि अधोक्षज श्रीकृष्णपादपद्म और अधोक्षज श्रीहरिनाम के विरुद्ध तथा मायाच्छन्न विचार हैं। सारे वेदशास्त्र जिन श्रीहरिनाम प्रभु के चरणकमलों के नजदीक आरती उतारते हैं; वह हरिनाम की कृपा से वंचित होने के लिए इन लोगों ने वेद-बखान के बहाने कर जड़वाद को आवाहन किया। वेदान्त शास्त्र की चर्चा करना कर्त्तव्य है। परन्तु श्रीहरिनाम प्रभु के कीर्तन के साथ-साथ यह करना आवश्यक है।

कलेर्दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥ (भा. १२-३-५१)

आदि श्रीमद् भागवत का उपदेश हमारी नित्यचर्चा का विषय हो।

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्ज्जयेत्॥

(अश्वमेध यज्ञ, गौमेध यज्ञ, संन्यास, माँस द्वारा पितरों का श्राद्ध और देवर से सन्तान उत्पन्न कराना, ये पाँच कार्य कलियुग में वर्जित हैं।)

यह श्लोक के विचारानुसार कलियुग में यज्ञ आदि क्रिया सम्भव नहीं है। कलियुग में कर्म

मार्गीय संन्यास भी वर्जित है। ज्ञान मार्गियों का 'अहं ब्रह्मास्मि' विचार वाले संन्यास वास्तव में परब्रह्म की सेवा का त्याग देना है। वे संन्यास करने के लिए भगवान् की सेवा भी त्याग दिया है। **भगवद् भजन ही संन्यास की पूर्णावस्था है।** मायावादी संन्यासी भगवान् कृष्ण के नित्य नाम-रूप-गुण-परिकर वैशिष्ट्य और लीला सभी से संन्यास लिया। परन्तु कृष्ण-भक्त का भुक्ति और मुक्ति से संन्यास है। मायावादी भुक्ति से संन्यास करने के लिए भक्ति से भी संन्यास ले लिया। और भगवान् के भक्त, भुक्ति-मुक्ति कामना से संन्यास लेकर श्रीभक्तिदेवी का चरणाश्रय किया। श्रुतिदेवी जिनके चरण-नख का पूजन करती हैं उसी अप्राकृत श्रीनाम के अनुशीलन से भगवद् भक्त ने संन्यास नहीं लिया। वे श्रीनाम को अनित्य नहीं मानते।

सारे वेद वेदान्त शास्त्र जिन श्रीनाम प्रभु के श्रीचरणारविन्द के अग्रभाग की आरती उतार रहे हैं, एकान्त भाव से उसी श्रीनाम-भजन-पन्था बौद्धमत नहीं है। बंगदेश के प्राकृत-सहजिया-वैष्णव-धर्म के बारे में चर्चा करते समय महामहोपाध्याय शास्त्री महाशय ने जो मत प्रकाश किया है*, वह यथार्थ वैष्णवधर्म के बारे में लागु नहीं है। वेदान्त शास्त्र में हरिनाम प्रभु का वर्णन मिलता है।

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ परिवृंहितः॥

(हरिभक्ति विलास १०/२८३)

(यह श्रीमद्भागवत महापुराण ब्रह्मसूत्र का अर्थ है। इसमें महाभारत का तात्पर्य यथार्थ रूप से निरूपण किया गया है। यह गायत्री मंत्र के भाष्यस्वरूप है। वेदों का अर्थ भी यहाँ विस्तारित किया गया है।)

महाभारत के अर्थ का निर्णय विशेष रूप से श्रीमद्भागवत में किया गया है। ईश, केन, कठ आदि दस उपनिषद् और श्वेताश्वतर के साथ लेकर ग्यारह उपनिषद्, उससे उन्नत अवस्था में नृसिंह तापनी, रामतापनी और सबसे ऊँचे स्तर पर गोपाल तापनी उपनिषद् प्रकाशित हुए हैं। बहुत तपस्या के फल से गोपालतापनी श्रुति मदनगोपाल और गांधर्वा की दासता प्राप्त की। श्रुतियों ने गोपियों के अनुगत होने के लिए तपस्या की। जो शान्त रस को उन्नत रस समझते हुए मधुररस को सर्वनिम्न रस मानते हैं। उनके विचार यह जड़ संसार के ज्ञान से प्रभावित है। यह सांसारिक ज्ञान के द्वारा चालित होकर ही किसी-किसी ने दस उपनिषद् को केवल-निर्विशेष भाव या शान्तरस के प्रतीक मानकर प्रधान उपनिषद् के रूप में प्रचार किया है। वास्तव में अप्राकृत राज्य के अन्दर मधुररस ही सर्वश्रेष्ठ और शान्तरस सर्वनिम्न रस हैं। इसी कारण भगवद्भक्त के विचारानुसार गोपालतापनी आदि उपनिषद् को प्रधान

---

* महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री जी ने लिखा है कि वैष्णवधर्म बौद्ध सहजिया-पन्थ की शाखा है। -सम्पादक

उपनिषद् के रूप में स्वीकार किया गया है। भागवत के तात्पर्यानुसार भगवद्भक्तों ने दस उपनिषद् के अन्दर भी भगवद्सेवा व भगवद्लीला का संकेत देखते हैं।

श्रीगौरसुन्दर ने जनाया-

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचार योगे सति हन्त तासां प्रायो वलीयः सविशेषमेव॥

(जो वेदशास्त्र परमतत्त्व को निर्विशेष कहते हैं उसी में भी फिर परम वस्तु को सविशेष के रूप में वर्णन किया गया है। विचार करने पर इन दोनों बातों में से सविशेषता ही प्रायः बलवान दीखती है।)

श्रीराधाकुण्ड में मध्याह्नकालीन अभिधेय की विशेषता है। श्रीरूप-रघुनाथ के किंकर कविराज गोस्वामी प्रभु ने गोविन्दलीलामृत ग्रन्थ में वह भजन-प्रणाली का विवेचन किया है। श्रीगुरुपादपद्म के साथ चर्चा करने से बंगला भाषा में लिखित श्रीचैतन्यचरितामृत के अन्दर भी वह भजन कथा का संकेत मिलता है। श्रील ठाकुर महाशय के द्वारा रचित 'प्रार्थना', 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका', श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित 'भजन रहस्य' और 'रूपानुग भजन दर्पण' आदि ग्रन्थ में ये सारी बातें विशेष रूप से चर्चा की गई हैं। शुद्ध हरिनाम के साथ-साथ इन सारी कथाओं की चर्चा होने पर ही हमारा मंगल होगा।

नैतत् समाचरेत् जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद् यथारूद्रोऽब्धिजं विषम्॥ (भा. १०/३३/३०)
अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्त्वत संहिताम्॥
यस्यां वै श्रुयमाणायां कृष्णे परम पुरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसां शोकमोहभयापहा॥ (भा. १/७/६-७)

(असमर्थ व्यक्ति, जो कि भगवान् नहीं है वह मन से भी ऐसा आचरण करने का न सोचे। जैसे रुद्रजी हलाहल विष का पान करने में समर्थ हैं; परन्तु कोई बुद्धिहीन व्यक्ति यदि उनके अनुकरण कर विषपान करे तो तुरन्त मर जायेगा।)

(अधोक्षज भगवान् के प्रति साक्षात् भक्तियोग के आचरण करने पर ही जीव के अनर्थों का नाश होता है। यह बात लोगों को जनाने के लिए श्रीव्यास देव ने सात्त्वत-संहितारूपी श्रीमद्भागवत की रचना की। जिनका श्रवण करते रहने से परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है और गौण रूप से शोक, मोह व भय दूर हो जाता है।)

नाम्नः श्रवणमन्तःकरण शुद्ध्यर्थम्।

(अन्तःकरण की शुद्धि के लिए नाम श्रवण करना चाहिए।)

इन सारे श्लोकों का तात्पर्य न समझ कर, क्रम पन्था पद्धति विचार न कर बनावटी भजन के प्रयास से कोई भी भजन मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकते अपितु भजन में विघ्न आ जाता है।

कारुण्यामृतवीचीमिस्तारुण्यामृत धारया।
लावण्यामृतवन्याभिः स्नपितां ग्लपितेन्दिराम्॥

(प्रेमाम्भोज-मरन्द-स्तवराजः)

(श्री राधिका प्रातःकाल कारुण्य रूप अमृत की लहरों में, मध्याह्नकाल तारुण्यरूप अमृत की धारा में और सायंकाल लावण्यरूप अमृत की बाढ़ में स्नान कर इन्दिरा यानी लक्ष्मीदेवी को भी ग्लानियुक्त कर रही है।)

इन सारी श्लोकों में रघुनाथ प्रभु ने जो विचार प्रकट किया, श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य, अष्टम परिच्छेद पर श्रीरायरामानन्द प्रभु ने जो सारे विचार प्रकट किये वह हमारे चर्चा का विषय हो। मुक्त पुरुषों के कार्यों का अनुसरण करने का उद्देश्य लेकर यदि चर्चा किया जाय तो कोई हानि नहीं है। परन्तु अनुसरण करने के नाम पर यदि हम अनुकरण करने लग जाय, अनुसरणीय आदर्श में यदि भोग्य-विचार आ जाय तब भगवद्भजन से हमेशा के लिए हमें पतित होना पड़ेगा।

बद्धों के साथ मिलकर हरिनाम नहीं होता। प्राकृत-सहजिया राधिकाजी के चरण के नख की शोभा का दर्शन नहीं कर सकता। आप लोग बहुत सावधानी के साथ राधिकाजी का चरण-नख की सेवा में अग्रसर होना। प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदाय सद्गुरु चरण का नख-शोभा दर्शन नहीं कर पाते। इसी कारण ही श्री राधिका की पदनख-शोभा का दर्शन नहीं कर पाता है।

आप लोग सुनिये, आपकी ऊषर जमीन उर्वरक होगी। शीघ्र ही फल प्राप्त कर सकेंगे। मैंने दस उपनिषद का व्याख्यान करने के लिए आदेश प्राप्त किया। मेरा भाषाज्ञान अल्प है। कृष्ण भूले हुए जीव का भाषा ज्ञान रहना सम्भव नहीं। मैं हरिनामामृत व्याकरण का भी कोई खबर नहीं रखता हूँ। श्रीगुरुपादपद्म हृदय में जो स्फूर्ति कराते हैं वे ही मेरी जिह्वा पर प्रकाशित होता है। मुक्त पुरुषों की बातें थोड़ा बहुत ज्ञात रखना। धीरे-धीरे अपनी खेती में अंकुर का उद्गम और फल होगा।श्रीकृष्ण-चरण-कमल से श्रौत परम्परानुसार मेरे श्रीगुरुचरण कमल तक परम निर्मलता है, परन्तु मेरे चित्त के दर्पण पर जो सारी मलिनता आ गई है वह आप लोग संशोधन कर लेना।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

हे भोगी जनता समूह! तुम लोग संसार को अपनी भोग्य वस्तु के रूप में क्यों सोचते हो? भोग में रहने से हरिभजन नहीं होगा। त्याग में भी हरि भजन नहीं है। समस्त विश्व भगवान् की सेवा का उपकरण है। यह सारा संसार अद्वितीय भोक्ता भगवान् का ही भोग का स्थान है। इस विश्व में कुण्ड अवतार लिए, गिरि गोवर्धन ने अवतार लिया। यह भोग या त्याग का स्थान नहीं है। ब्रह्मलोक जैसा निर्विशेष स्थान भी नहीं है। यहाँ वैकुण्ठ लोक का ऐश्वर्य भाव की अधिकता भी नहीं है। यह माधुर्यधाम की पराकाष्ठा है। कृष्णपादपद्म सेवन की सबसे ऊँची स्थिति है। चतुष्पाद धर्म का प्रतीक स्वरूप अरिष्टासुर का यहाँ विनाश हो चुका है।

एत सब छाड़ि आर वर्णाश्रम-धर्म।
अकिञ्चन हञा लय कृष्णैक-शरण॥

(चै॰ च॰ मध्य २२/९०)

ब्रह्मसूत्र और श्रुतियों की चर्चा कीजिए। यदि अश्रौत पन्थानुसार वह सारे श्रौतशास्त्र की समझने का प्रयास करें तो श्रुति की यथार्थ तात्पर्य नहीं समझ पायेंगे; असुविधा में पड़ जायेंगे। श्रीमद् भागवत में प्रदर्शित पथानुसार श्रुतियों की चर्चा कीजिए। श्रीमद् भागवत सारे वेदान्तों का सार हैं। सारी श्रुतियों का तात्पर्य निर्णय करने वाले शास्त्र हैं। श्रीमद् भागवत के प्रतिपादन और श्रुतियों के प्रतिपादन अलग नहीं हो सकते।

धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्म्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा परैरीश्वरः
सद्योहृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रुषुभिस्तत्क्षणात्॥

(भा॰ १/१/२)

श्रुति व्याख्यान में प्रारम्भिक बातें कह रहा हूँ। यह सम्बन्ध-ज्ञान की चर्चा है। श्रीराधागोविन्द की मध्याह्नकालीन लीला के समय योग्यतानुसार अभिधेय की चर्चा करूँगा। अभिधेय का विचार श्रीमद् भागवत में विशेष रूप से प्रकाशित हुआ। सायंकाल श्री चरितामृत और ठाकुर महाशय की पदावली कीर्तन श्रवण करूँगा। ये सारी बातें ठाकुर भक्तिविनोद जी ने बड़े सुन्दर रूप से प्रकाशित किया। मुझे

सुनने का अवकाश मिला था। आप लोगों के दर्शन से यदि वो सारी बातें फिर से मेरी स्मृति पथ में आवे तो फिर से यह प्रकाशित होंगी। श्रीचरितामृत का भाष्य लिखते समय श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर ने मुझे जो उपदेश प्रदान किया उनमें से कुछ चर्चा करूँगा।

तर्कपन्थ त्यागकर श्रौत-पन्थ स्वीकार करना पड़ेगा। श्रवण करना पड़ेगा। पहले ही आँखों से नहीं देखना, नहीं तो बेकार आदमी बन जाओगे। महापुरुषों के आचरण यदि पहले ही आँखों से देखने का प्रयास करें तब नकल नवीस बनकर असुविधा में फँस जाओगे। बाबाजी महाशय से भी अपने को अधिक सिद्ध दिखाने की घमण्डपूर्ण प्रयास कर एक नये भक्त ने नर कपाल से जल-पान करने लगा। परन्तु ऐसी घमण्डपूर्ण विकृत अनुकरण के फलस्वरूप उसका भजन राज्य से पतन हो गया था। महापुरुषों का आचरण अपनी दृष्टि में देखने से ऐसी ही असुविधा में फँसना पड़ेगा।

प्रात:काल श्रुति की चर्चा करूँगा। मध्याह्नकाल के समय श्रीरूप-रघुनाथ के ग्रन्थ से रस शास्त्र की आलोचना, अपराह्नकाल श्रीमद् भागवत और सायंकाल श्रीचैतन्यचरितामृत की चर्चा होगी। श्रुतिपाठ का चरमफल श्रीहरिनाम में एकान्त रुचि हो जाना। आप लोग श्रीहरिनाम श्रवण-कीर्तन से विरत नहीं होना। मायावादी के जैसा श्रुति का व्याख्यान करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम श्रुति की चर्चा करेंगे परन्तु प्रच्छन्न नास्तिक बनने के लिए नहीं करेंगे। श्रुतियाँ गोपियों की चरणरज-प्राप्ति और श्रीनामप्रभु के श्रीचरणकमल की आरती करने के जो दृष्टान्त दिखाये, वह आदर्श ही हमारी चर्चा का विषय होगा।

❖

★ महामंत्र ★

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

❖

श्री नाम भजन

(अपने किसी शिष्य ने जो परिप्रश्न किया था उसका उत्तर देते हुए श्रील प्रभुपाद श्री रूपानुग धारा के अनुसार किस प्रकार से श्री हरिनाम करना चाहिए वह प्रकाशित किया। श्रील प्रभुपाद के परम्परा में स्थित सभी के लिए दिशा-निर्देश के रूप में यह पत्र की मान्यता है। हिन्दी भाषी भक्तों के लिए मूल बंगला से उस पत्र का अनुवाद किया जा रहा है।)

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्री गौड़ीयमठ
बाग बाजार, कलिकाता
७ अग्रहायण, १३४० बंगाब्द
२३ नवम्बर १९३३

स्नेह विग्रहषु (मेरे प्यारे),

आपके १४-११-३३ तारीख के पत्र से समाचार ज्ञात हुआ। बहुत अधिक कार्य में व्यस्त रहने के कारण यथासमय आपके पत्र का उत्तर नहीं दे पाया इसलिये आप मन में दुःख नहीं मानना। मैं हमेशा ही आप लोगों की मंगल चिंतन करता रहता हूँ।

श्री कृष्ण नाम लेते समय कृष्ण का अनुशीलन होता रहता है और कर्मफल भोग, ब्रह्मज्ञान रूपी मुक्ति-कामना आदि अनर्थ दूर होने लगता। धीरे-धीरे जीव के सारे अनर्थ दूर हो जाते है। श्रीनाम ही स्वयं कृष्ण हैं। केवलमात्र स्वयं ही नहीं स्वयंरूप ही नाम है। श्रीनाम भजन के अलावा हमारी दुर्गति दूर करने का और कोई भी उपाय नहीं है। वैकुण्ठ नाम बाहिरी जगत् के नाम से अलग हैं। वह नाम प्रपंच में अवतरण कर हमारा कर्णबेध संस्कार* करवाता है। संस्कृत कर्ण कृष्ण नाम श्रवण करने का अधिकार प्राप्त करते हैं। वैकुण्ठ-नाम सुनने के पश्चात वैकुण्ठ-रूप का ज्ञान और अवस्थान हम अनुभव कर पाते हैं। उससे जो आनन्द प्राप्त कर पाते हैं वह आनन्द हमें जड़ आनन्द यानी भोग-चिन्ता से रक्षा करते हैं। मैं कृष्ण-भोग्य हूँ। मेरे नित्य स्वरूप के प्रति कृष्ण प्रीत हो कर मुझे आकषर्ण करने से मैं उनके नित्यरूप में मोहित हो जाता हूँ। थोड़ा बहुत कृष्ण-गुण इस प्रकार उदित होने पर मैं अपने नाम-रूप के साथ मेरे नित्य गुणों के द्वारा समस्त चेतन गुण युक्त कृष्ण गुणों का पक्षपाती बन जाता हूँ। वे भी उस समय मेरे

---

* वैदिक प्रथानुसार द्विजाति के बालक का उपनयन संस्कार के समय कानों में छेद करके कुण्डल पहनाया जाता है। इसे कर्णबेध संस्कार कहते हैं। ऐसे संस्कृत कर्ण ही वेद मंत्र श्रवण के अधिकार प्राप्त करते हैं। -सम्पादक

स्वरूपगत गुणों की प्रशंसा करते रहते हैं। उससे मेरा उत्साह बढ़ जाता है। भगवद् परिकरों ने ही मेरे बन्धु-स्वजन हैं, वे सभी सेवोन्मुख रहने के कारण में भी उनके स्वरूपों की सेवा कर सकता हूँ। तभी कृष्ण की लीला में मेरा लोभ उत्पन्न करवाते हैं। तब मैं उनकी लीला में सेवा करने योग्य स्वरूप और साथ-साथ उसी स्वरूप का नाम-रूप-गुण प्राप्त करूँगा। मेरे स्वरूपगत वह नाम-रूप-गुण आदि मुझे वेदान्त दर्शन की यह-**'स्वशब्दोन्मानाभ्याञ्च'** (वेदान्त सूत्र २/३/२३)

सूत्र* समझने का अवकाश देते हैं। मैं भी तब-

याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।

यह भागवत श्लोक** का व्याख्यान समझ कर सेवा में मग्न हो जाता हूँ। आशा करता हूँ आप सकुशल हों।

नित्याशीर्वादक

श्रीसिद्धान्त सरस्वती

---

* **'एषोऽणुरात्मा'** इस श्रुति में जीव को अणू कहा गया है और दूसरे स्थानों पर परमाणू के समान सूक्ष्म बताया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया कि एक केश को अग्रभाग को सौ भाग में विभक्त कर फिर उसके एक-एक भाग को सौ भाग करने पर जो सूक्ष्म होता है, जीव उसके सदृश अति सूक्ष्म पदार्थ है। यहाँ जीव का अणु परिमाणत्व व्यक्त हो रहा है। तो भी वेद शास्त्र में कहीं-कहीं जीव को अनन्त करके कहा गया है। वह मुक्त जीव को उद्देश्य करके कहा गया है। 'अन्त' शब्द का अर्थ 'मरण' है। अतः यहाँ पर 'अनन्त' का अर्थ **'मृत्यु रहित'** मानना पड़ेगा।

-श्रील बलदेव विद्याभूषण कृत श्रीगोविन्द भाष्य

तात्पर्य यह है कि अणु परिमाण सूक्ष्म जीव भगवान् की अनन्त लीला नाम-रूप-गुण को कैसे उपलब्ध कर सकते हैं। वेदान्त शास्त्र का प्रमाण प्रस्तुत कर श्रील प्रभुपाद इसका यथार्थ समाधान दिये हैं। नाम भजन जब उस स्तर तक पहुँच जाता है जहां जीव अपने स्वरूप गत नाम-रूप-गुण और परिकर वृंद का अनुभव प्राप्त कर लेते हैं तभी ये वेदान्त सूत्र उनके लिए उपलब्धि के विषय होते हैं। जन्म मृत्यु के चक्कर से मुक्त होकर जीव अनन्त अनुभव सम्पन्न बन जाते हैं।

** श्रीमद् भागवत के रास पंचाध्यायी के श्लोक का यह अंश है। भगवान् इस संसार में अवतरण कर जो सारी लीलायें करते हैं वह लीला श्रवणकर जीव तत्पर यानी भगवत्परायण बन जाते हैं। ऐसा होना तभी सम्भव है जब कोई जीव भजन के उस पूर्व वर्णित स्तर पर पहुँच जाता है। भगवान् की लीला कथा मुक्त पुरुष ही यथार्थ रूप से समझ सकते हैं और कथा श्रवण कर ये भगवान् की चिन्मयीस्वरूप की सेवा में मग्न हो जाते हैं।

-सम्पादक

चित् कर्णविध संस्कार

श्री श्री गुरु गौराङ्गौ जयतः

श्री गौड़ीयमठ, कलिकाता
३ पौष, १३३९, १८ दिसम्बर, १९३२
५ नारायण, ४४६ गौराब्द

स्नेहविग्रहेषु-

आपके २४ अग्रहायन तारीख के पत्र पाठ कर समाचार ज्ञात हुआ। आपके नाम-श्रीद्वारकेशदास अधिकारी है। श्रीहरिनाम और भगवान् श्रीहरि दो अलग वस्तु नहीं है; एक ही वस्तुमात्र है। जिस समय श्रीनाम शब्द को होठ व जिह्वा के द्वारा उच्चारण करने योग्य और शब्दमात्र विचार कर कानों के द्वारा ग्रहण करने का प्रयास उदित होता, उस समय श्रीनाम पाञ्चभौतिक भूमिका के अन्दर गृहीत होने के कारण कर्णमात्र के ग्रहण-योग्य विषय होते हैं। आँखे, नासिका, जिह्वा, त्वचा और पूर्व ज्ञान के संचय करने वाले गृहरूप मन, कर्ण को अपने भागीदार मात्र समझकर मत्सरता प्रकाश करते हैं। इसी कारण अनर्थ की निवृत्ति नहीं होती। श्रीनाम और नामी अभिन्न है, ऐसे धारणा करने की भी हमें योग्यता नहीं होती। परन्तु जिस क्षण हमारे चित्त् कर्णवेध-संस्कार सम्पन्न होता उसी क्षण कर्ण ने और चारों इन्द्रियों के साथ मत्सरता का भाव प्रकाश नहीं करता। ये चारों इन्द्रियाँ भी कर्ण द्वारा ग्रहणीय चित् शब्द के साथ मत्सरतावश विवाद नहीं करता। तब प्रेम की झरना सारे चेतन इन्द्रियों से उफान कर सभी विरोध-भाव व मत्सरता रूपी अनर्थों को हटा देती है। तभी श्रीनामप्रभु की कृपा से श्रीरूप, गुण, परिकरों की विशेषतायें व लीला श्रीनाम में ही विकसित होकर जीव को बाहिरी जगत की अनुभूति से पृथक स्थान पर स्थापना कर देते हैं। उस समय जड़बद्ध जीव का चिन्ता या मन की चंचलता नहीं रह सकती। जैसे श्रीनाम की कृपा हो, सर्वतोभाव से श्रीनाम के निकट ये ही प्रार्थना करना। अष्टकालीन लीला स्मरण आदि कृत्य अनर्थ युक्त अवस्था के लिए नहीं है। कीर्तन करते समय ही श्रवण होता है और स्मरण का सुयोग आ जाता है। उसी समय ही अष्टकाललीला-सेवा का अनुभव होना सम्भव है। कृत्रिम-विचार से अष्टकालीन लीला स्मरण नहीं करना चाहिए।

नित्याशीर्वादक
श्री सिद्धान्त सरस्वती

श्रीराधाकुण्ड के तट पर श्रील प्रभुपाद

(अपराह्नकाल)

९ अक्टूबर १९३५

श्रीमद् भागवत के व्याख्यान

(गौड़ीय १४ खण्ड २३ संख्या)

श्रील प्रभुपाद के आदेशानुसार ब्रह्मचारी श्री स्वाधिकारानन्द ने* शरणागति पुस्तिका से "राधाकुण्ड तट कुञ्ज कुटीर" यह गीत का कीर्तन किया। श्रील प्रभुपाद के श्रीमुखमण्डल में एक दिव्यभाव प्रकाशित हुआ। कीर्तन सम्पूर्ण होने के पश्चात् कल्याण कल्पतरु पुस्तिका से 'साधु संग ना हइल हाय' यह संगीत का कीर्तन करने के लिए श्रील प्रभुपाद ने आदेश दिया। कीर्तन समाप्त होने पर श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद् भागवत कथा-कीर्तन प्रारम्भ किया।

प्रयोजन तत्त्व प्राप्ति के लिए जो अनुष्ठान किया जाता है उसे 'अभिधेय' कहते हैं।

वेद शास्त्र कहे 'सम्बन्ध', 'अभिधेय', 'प्रयोजन'।
'कृष्ण' प्राप्य-सम्बन्ध, 'भक्ति', प्राप्येर साधन॥

(चै. च. मध्यखण्ड २०/१२४)

वेदशास्त्र, जिसे श्रुति भी कहा जाता है, उस शास्त्र में सम्बन्ध ज्ञान के बारे में ही विशेष प्रकार से चर्चा हुई है। श्रुति के भाष्यस्वरूप श्रीमद् भागवत में अभिधेय की बातें वर्णित हुई हैं।

महाभारत आदि ग्रन्थ रचना करने के पश्चात् भी श्रीव्यास जी को अप्रसन्नता हुई और श्रीनारद जी द्वारा वह अप्रसन्नता का कारण निर्देश करना, यह सारे प्रसंग से जाना जाता है कि श्री कृष्ण कथा की यथार्थ वर्णन नहीं करने के कारण ही व्यास जी की ऐसी दशा हुई। कोई सोच सकते हैं कि व्यासदेव जी महाभारत और दूसरे पुराणों में बहुत सारी श्रीकृष्णकथा कही हैं फिर उनकी कृष्णकथा की कमी कहाँ रही? महाभारत के अन्दर जो श्रीकृष्णकथा की चर्चा हुई वो वास्तविक पक्ष में नारायण या विष्णु की कथा है। महाभारत में अभिधेय का विचार भी यथार्थ रूप से प्रकाशित नहीं हुआ। अर्जुन गीता में सम्बन्ध ज्ञान की बातें हैं। अभिधेय की प्रारम्भिक बातें कुछ मिलती हैं। परन्तु यथार्थ रूप से वर्णन नहीं हुआ। इसी कारण ही महाभारत का तात्पर्य निर्णय करने के लिए श्रीमद् भागवत का अवतार हुआ।

---

* परवर्ती समय में श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज। -सम्पादक

श्रुति का अधिकांश वचनों में शान्त रस की कथा का वर्णन हुआ। अशांत भाव नष्ट हो जाने पर यह शान्त रस उदित होता है। पारमार्थिक राज्य के प्रारम्भिक पथिकों के लिए यह शान्त रस ही प्रथम पाठ है। श्रुति का भाष्य स्वरूप श्रीमद् भागवत में इन सारी बातें और ज्यादा विकसित रूप में वर्णित हुई हैं। श्रुति की ही बातें आसानी रूप से समझाने के लिए थोड़ा भाषान्तरित और विस्तरित होकर श्रीमद् भागवत में वर्णित हुई हैं।

साधन भक्ति पर्याय में श्रद्धा ही मूल विषय है। भाव भक्ति पर्याय में रति और प्रेम भक्ति पर्याय में प्रीति यानी 'रस' ही मूल विषय है। इस प्रपंच में चिद्रस नहीं मिलता। साहित्यदर्पण आदि अलंकार ग्रन्थ में जो रस का विचार देखा जाता वो जड़ रस की बातें हैं। जहाँ पर सीमाबद्धता रूप धर्म प्रबल है, हम उसी देश के निवासी बन जाने के कारण वेदरूपी कल्पवृक्ष का पके हुए फल का आस्वाद नहीं कर पा रहे हैं। जो सोचते हैं गौरसुन्दर की सेवा त्यागकर, उनको जीवकोटि के अन्तर्गत मानकर भी श्रीराधागोविन्द की सेवा हो सकती है, श्रीमद् भागवत का तात्पर्य समझा जाता है, ये सब 'चिन्त्य भेदाभेदवादी' है। वे कभी भी निगम कल्पतरु के अप्राकृत रस का आस्वादन नहीं कर पाते। जो आध्यक्षिक है वे कृष्ण भोगी या गौर भोगी है। वे जड़ सम्भोगवादी हैं।

प्रयोजन बोध के विपरीत भाव ही अनर्थ है। श्रीरामानन्द राय, श्रीदामोदर प्रभु जिस पथ पर चलने का आदर्श दिखाये, श्रीबलभद्र भट्टाचार्य के चरित्र में ऐसा आदर्श का अभिनय नहीं है। आपने पृथक् रूप से महाप्रभु की सेवा करने का अभिनय किये हैं। आप साक्षात् औदार्य-विग्रह स्वयं-रूप कृष्ण की सेवा कर भी मछुयारे को कृष्ण समझ कर वह भ्रम पूर्ण कृष्ण दर्शन के लिए लालायित हुए थे। ब्रज में रहते हुए भी मकर-स्नान के लिए इच्छा प्रकाश किये थे। जो गौरसुन्दर साधुओं में अग्रणी और राधा-कृष्ण से अभिन्न हैं, उनकी चरणकमल की सेवा का अभिनयकर भी कर्ममिश्रा सेवा का आदर्श प्रदर्शन किये। यह दृष्टांत के द्वारा श्रीमन् महाप्रभु ने हमें शिक्षा प्रदान किया कि भोगपरा बुद्धि या कर्ममिश्र विचार लेकर सेवा करने से गौरसुन्दर की सेवा नहीं होती। जिसने लोगों को भोग के लिए सामग्री संग्रह कर देता है। लोगों को जीभ का गलत वस्तु का आस्वादन करने की लालच का बढ़ावा देते हैं, ऐसे मछली पकड़ने वाले मछुआरे को कृष्ण समझना एक 'विवर्त्तबुद्धि' है। **ऐसा 'विवर्त्तबुद्धि' को ही आध्यक्षिकता कहते हैं।** संसार के लोगों ने असली कृष्ण परित्याग कर ऐसे कृष्ण देखने को प्रमत्त हैं। बलभद्र भट्टाचार्य का आदर्श ग्रहण करने वालों ने अपने पाँचभौतिक नेत्रों के द्वारा कृष्ण-दर्शन व गुरु-दर्शन करने के लिये व्यस्त हैं। वे अभक्त होने पर भी भक्त पदवी पाने के लिए व्याकुल हैं। भक्तिमान् होना एक वस्तु है और 'भक्तब्रूव' होना कुछ और है।

य आत्मानं भक्तं ब्रवीति स एव भक्त ब्रुवः।

(जो अपने आपको 'भक्त' कहलाता है वह 'भक्त ब्रुव' है।)

अभक्तों को रिश्वत देने से ही 'भक्त ब्रुव' हुआ जा सकता है।

दस रुपया खर्च कर कोलकाता से मथुरामण्डल में आ सकता हूँ- यह विचार वैष्णवों का विचार नहीं है। मथुरामण्डल को दृश्य व भोग्य संसार मानने पर मथुरामण्डल का दर्शन नहीं हो सकता है। मैं अड़तालीस संस्कार-युक्त स्मार्त हूँ, मैं संसार का एक प्रधान व्यक्ति हूँ-ऐसे विचार जड़ गुण के अन्तर्गत विचारमात्र है। श्यामानन्द कुल के गौरवस्वरूप, गोपीवल्लभपुर के निवासी, विश्वम्भरानन्ददेव गोस्वामी जी के सन्दर्भ और वैष्णव शास्त्रों में विशेष विद्वत्ता रहा। वे कहते थे कि जो अपने चमड़े के घमण्ड से वैष्णव-विद्वेष में लगे हैं वे सारे चर्मकार श्रेणी के हैं। सन्त तुलसीदास जी भी ऐसी बातें कहे हैं—

'हरि न भजे तो चारों चमार'

जो 'वर्णाश्रमचारवता' श्लोक* तक टिकट खरीदे हैं, उनको अप्राकृत दर्शन नहीं हुआ। उनके अन्दर कर्म-मार्ग का विचार ही बलवान् है। उसके साथ धर्म का थोड़ा आभास मात्र है। जो 'मैं-मेरेपन' के अपराध से युक्त हैं, उनके मुख से कभी भी शुद्ध हरिनाम उच्चारित नहीं हो सकता।

मैं श्रीमद् भागवत नहीं सुनूँगा; केवलमात्र मेरे इन्द्रियतृप्ति के लिए भागवत श्रवण का नाटक दिखाऊँगा-यह भागवत श्रवण नहीं है। रसिकों से ही भागवत श्रवण करना होगा परन्तु जड़ रसिकों से नहीं। भागवत श्रवण करने के पश्चात् यदि अधोक्षज वस्तु के प्रति भक्ति योग प्रयुक्त न हो पाये तो सारे श्रम व्यर्थ हो जायेंगे।

हम कहाँ आये हैं? हरि भजन की आशा लेकर श्रीराधाकुण्ड में श्रीगुरुचरणकमल के निकट उपस्थित हुए है। परन्तु असली कर्त्तव्य कार्य से मन भटका कर यदि गलत रास्ते पर चले जायें, तो हमारा भयंकर अमंगल होगा।

इसलिए श्रील दास गोस्वामी प्रभु जी कैसे अपने श्रीगुरुचरणकमल की वन्दना की है आप लोग सुनिये- **नाम श्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपं**

रूपं तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम्।

राधाकुण्डं गिरिवरमहो राधिकामाधवाशां

प्राप्तो यस्य प्रथित कृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि॥

(श्रेष्ठ नाम-महामंत्र, श्रीगोपाल मंत्र आदि दीक्षा मंत्र समूह, शचीनन्दन भगवान् श्रीगौरहरि, उनके अभिन्न तनु श्री स्वरूप दामोदर जी, श्री रूप-सनातन के सान्निध्य, ब्रजमण्डल में वास, राधाकुण्ड, गिरिगोवर्द्धन और श्रीराधामाधव की आशा जिन गुरु की कृपा से मैंने प्राप्त किया, ऐसे गुरु चरणों में नमन करता हूँ।)

---

* चैतन्यचरितामृत मध्य. अष्टम परिच्छेद में रायरामानन्द सम्वाद दृष्टव्य। -सम्पादक

आप लोग वे गुरु वर्ग हैं। श्रीगुरुचरणकमल के कायव्यूह हैं। गुरु-सेवा में लगे हुए हैं। हमारी बड़ी आशा है कि श्रीराधागोविन्द की सेवा प्राप्त करूँ। श्रीगुरुचरणकमल इसी आशा को सब प्रकार से बढ़ाते हैं।

आशाभरैरमृत सिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालोमयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्व्रजे न च वरोरु वकारिणापि॥

(हे वरोरु राधे! मैं अमृतसमुद्र-प्राप्ति की आशा लेकर अति कष्ट के साथ समय बिता रहा हूँ। अब यदि तुम मेरे ऊपर कृपा न करो तब मेरे प्राण रक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। ब्रजवास में भी क्या रखा है। इतना तक कि श्री कृष्ण से भी मेरा क्या काम है?)

नाम सेवा के द्वारा ही श्रीराधागोविन्द की सेवा-प्राप्ति होती है। श्रीराधागोविन्द-सेवा की प्राप्ति और नाम सेवा पृथक वस्तु नहीं है। नाम सेवा केवलमात्र साधन नहीं है। वे साध्य हैं। हमें नामापराध नहीं करना है। नामाभास करना भी हमारा आदर्श या लक्ष्य नहीं है। नामाभास करने पर मुक्ति होती है। मुक्ति की कामना भागवत-धर्म का विरोधी है।

धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद् भागवते महामुनिकृते किंवा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रुषुभिस्तत्क्षणात्॥

(यह श्रीमद् भागवत महामुनि श्रीनारायण के द्वारा प्रकाशित हुए हैं। यह श्रीमद् भागवत ग्रन्थ में मत्सरताहीन साधुओं को सर्वश्रेष्ठ धर्मस्वरूप शुद्ध भक्तियोग का निरूपण हुआ है। इस परम धर्म में मुक्ति वासना तक नहीं है और कपट रहने की तो कोई बात नहीं है। नित्य अविनाशी अद्वयज्ञान वस्तु तत्त्व को अनुभव कराने वाले यह ग्रन्थ श्रवण करने की इच्छा मात्र से ही भगवान् श्रीहरि हृदयकमल में अवरुद्ध हो जाते हैं।)

कृष्ण को घोड़ा बनाऊँगा-पंचोपासक का यह विचार वास्तव में कर्म जड़-स्मार्तों की दुष्टता है। क्या यह शान्त नहीं होगी? जिन लोगों ने स्मार्तों को अनुगत होकर या पंचोपासकों को अनुगत होकर विद्वत्ता प्राप्त करते हैं, अपने को विद्वान् समझते हैं, अपने को भागवत व्याख्याता कहलाते हैं, वे कृष्ण व भागवत को घोड़ा बनाना चाहते हैं। वे सारे कृष्ण-भोगी सम्प्रदाय हैं। इन लोगों से हम हजारों योजन दूरी बनाये रखेंगे।

राधामाधव-सेवा की आशा सबसे बड़ी आशा है। वह आशा सफल करने के लिए राधाकुण्ड तट पर भजन करने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। श्रीरूप गोस्वामी प्रभु ने यह बात कही है। श्रीरूप-किंकर के रूप में श्रील दास गोस्वामी प्रभु ने यही बताया है।

जो गुरु पादपद्म नामाभास या नामापराध नहीं देते हैं परन्तु श्रीनाम देते हैं; वे ही असली गुरुदेव हैं और जो गुरु श्रीनाम भजन को ही सारे साधनों में श्रेष्ठ नहीं कहते हैं, जो गुरु नाम-भजन के लिए मंत्र नहीं देते हैं, श्रीकृष्णचैतन्य को नहीं जनाते हैं, उनके दूसरे स्वरूप, स्वरूपदामोदर के साथ साक्षात्कार नहीं कराते हैं, श्रीरूप के अप्राकृत चरण-कमल की सेवा में अधिकार नहीं देते हैं परन्तु 'गुरु' नाम से परिचित होकर ऐसे लघु-क्रिया करते हैं, उस प्रकार लघु आचरण करने वाले के संग से हमारा कोई मंगल नहीं होगा।

गौड़मण्डल केवल मात्र साधक या प्रारम्भिक भक्तों के लिए है, ऐसी बात दास गोस्वामी प्रभु जी नहीं कहते हैं। ब्रज मण्डल और गौड़ मण्डल की अभिन्नता दर्शन से ही औदार्य-विग्रह श्रीगौर-चरणकमल आश्रय कर राधागोविन्द की सेवा सम्भव होती है।

यदि हम भागवत का विचार त्याग करें तो कोई सामान्य न्यायशास्त्र के ज्ञाता से, पतंजलि ऋषि के कोई सामान्य शिष्य से, कोई भी सामान्य ज्ञान सम्पन्न वैदान्तिक से, कोई भी प्रच्छन्न या स्पष्ट नास्तिक से हमें पराजित होना पड़ेगा। केवल मात्र श्रीमद् भागवत की कथा ही बार-बार कहते रहूँगा-जीवन के अन्तिम दिन तक, अन्तिम स्वाँस तक कहते रहूँगा। मेरे गुरुदेव की वाणियाँ, परम गुरुदेव की वाणियाँ, परात्पर गुरुदेव की वाणियाँ हमेशा के लिए कहता रहूँगा। उससे मैं बिल्कुल थोड़ा-सा भी नहीं हटूँगा। इससे अलावा मैं दूसरा का संग नहीं करूँगा। उनके ललचाने से मैं लोभी नहीं बनूँगा। जितने दिन जीवित रहूँ, जैसे सारे विश्व में श्रीमद् भागवत की कथायें, श्रीगौरसुन्दर की वाणी सैकड़ों मुख से कीर्तन कर सकूँ--आप सभी गुरुवर्ग* मुझे यह आशीर्वाद दीजिये। सारे संसार के निकट यह प्रार्थना करता हूँ कि श्रीराधामाधव सेवा-प्राप्ति के लिए मेरी आशा पूर्ण हो। श्रील दास गोस्वामी प्रभु के चरण-कमल की धूल का एक कण यदि किसी को प्राप्त हो जाये, तब उनके लिए और कोई धर्म मायने नहीं रखता। ऐसा होने पर प्राकृत सहजिया-गिरि छूट जायेगा। मायावाद, विभिन्न प्रकार के नास्तिकवाद छूट जायेगा। मुक्ति की कामना तक छूट जायेगी। इतना तक कि वैकुण्ठ के ऐश्वर्यपरक विचार भी ढीला पड़ जायेगा। श्रीराधामाधव-आशा ही हृदय की सम्राज्ञी बनेगी। जब तक हम दूसरे विचार लेकर रहेंगे तब तक 'कृष्णनाम' मुख से नहीं निकलेगा।

---

* अमानी-मानद धर्म का प्रदर्शन करते हुए श्रील प्रभुपाद ने अपने शिष्य तथा अनुयायियों को ही 'गुरुवर्ग' कहकर सम्बोधन किया है। -सम्पादक

मन्त्र और नाम

कृष्ण नाम ग्रहण करने की इच्छुक सर्व प्रथम ऐसे गुरु की शरण लें जिनका एक मात्र व्रत है 'श्रीकृष्णनाम कीर्तन'। गुरु के निकट आत्मसमर्पण कर दिव्यज्ञान प्राप्त करना है। श्रीगुरु-वैष्णव के श्रीमुख से निरन्तर कृष्णनाम व कृष्णकथा श्रवण करना है। ऊँचे स्वर से, अपराध-शून्य होकर, सदैव भगवान् को पुकारते हुए कृष्ण नाम-कीर्तन का अनुशीलन करना है।

भगवन्नाम के साथ चतुर्थी विभक्ति संयुक्त कर आत्मनिवेदन के द्वारा निष्कपट-भजन करने की इच्छा होने पर मन्त्र की प्राप्ति होती है। भगवन्नाम को सम्बोधन के द्वारा भगवन्नाम का ही भजन अनुष्ठित होता है। पद के अन्त में चतुर्थी विभक्ति* लगाने से शरणागति की ओर उद्देश्य करते है। सम्बोधनयुक्त पद ❖ का कीर्तन से कीर्तनकारी को नित्य भगवत्सेवा-प्राप्ति की अभिलाषा उद्देश्य करते हैं। मन्त्र जप के द्वारा दीक्षाप्राप्त व्यक्ति को संसार-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है और मुक्त पुरुषों के भगवन्नाम का सम्बोधनपरक पद-कीर्तन उनके नित्यभजन तात्पर्यपरक हैं। **कृष्णमन्त्र** को साधन जानना और **कृष्णनाम** को साधन व साध्य जानकर साध्य-साधन का आपस में एकत्व विचार ही व्यवधान रहित भक्ति के रूप में स्वीकार किया गया। मन्त्र और नाम दोनों ही भगवान् विष्णु के वाचक हैं और भगवान् से अभिन्न है। भगवान् विष्णु ही वाच्य-विग्रह हैं। सम्बन्ध-ज्ञान प्राप्ति का प्रयास ही मन्त्र का साधन है। मन्त्र सिद्ध होने पर मुक्त पुरुषों का भजन प्रारम्भ होता है।

कृष्ण मन्त्र हैते हवे संसार मोचन।
कृष्ण नाम हैते पावे कृष्णेर चरण॥ (चै. च. आदि ७/७३)

-श्रील प्रभुपाद कृत गौड़ीय भाष्य
(चै. च. आदि ७/४०७)

---

* 'कृष्ण' नाम के साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़ने से 'कृष्णाय' पद बनता है। व्याकरण के अनुसार सम्प्रदान के अर्थ बोध कराने के लिए चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

❖ 'हरि' शब्द सम्बोधनयुक्त होने पर 'हरे' पद बनता है।

-सम्पादक

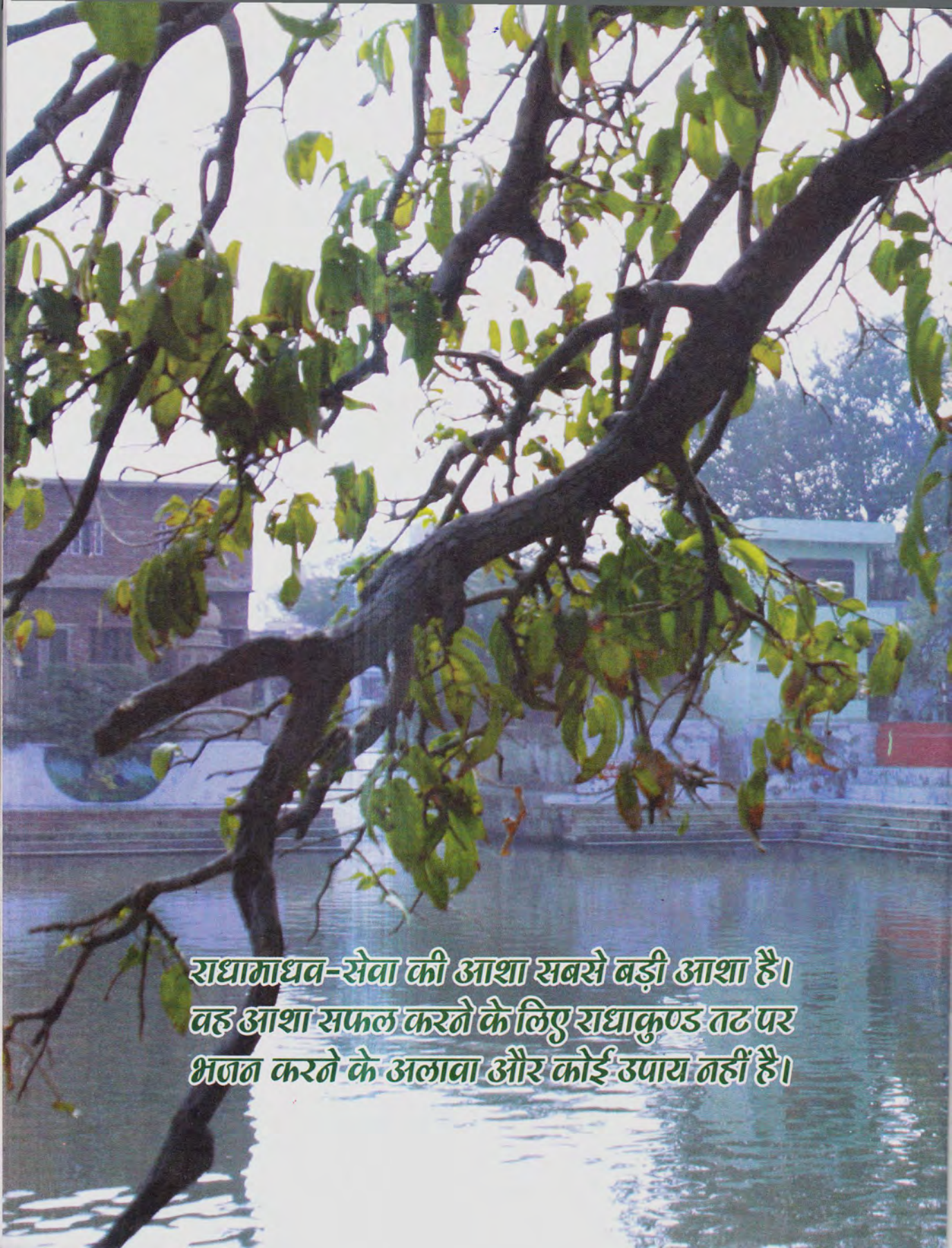

राधामाधव-सेवा की आशा सबसे बड़ी आशा है।
वह आशा सफल करने के लिए राधाकुण्ड तट पर
भजन करने के अलावा और कोई उपाय नहीं है।